बाल जीवनी माला

१. डारविन	अशोक घोष
२. आइजक न्यूटन	ओमप्रकाश आर्य
३. शरतचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
४. रामानुजन	डा. वजीर हसन आब्दी
५. जगदीशचन्द्र बसु	सुभाष मुखोपाध्याय
६. मिर्जा गालिब	रजिया सज्जाद ज़हीर
७. निराला	डा. रामविलास शर्मा
८. आर्किमीदिज	गुणाकर मुले
९. भास्कराचार्य	गुणाकर मुले
१०. सी. वी. रामन	विश्वमित्र शर्मा
११. एडिसन	शंकरलाल पारीक
१२. वाल्तेयर	देवीप्रसाद
१३. प्रफुल्लचन्द्र राय	राजीव सक्सेना
१४. मादाम क्यूरी	गीता बन्दोपाध्याय
१५. गेलीलियो	ओमप्रकाश आर्य
१६. पास्कल	गुणाकर मुले
१७. आइंस्टाइन	युगजीत नवलपुरी
१८. केपलर	गुणाकर मुले
१९. राहुल सांकृत्यायन	भदन्त आनन्द कौसल्यायन
२०. बंकिमचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
२१. प्रेमचन्द	नागार्जुन
२२. कॉपर्निकस	डा. वजीर हसन आब्दी
२३. लुई पाश्चर	शंकरलाल पारीक
२४. मेंडेलीफ	गुणाकर मुले

प्रत्येक का मूल्य ३ रुपये ५० पैसे

जीवनी माला

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
रानी झांसी रोड, नई दिल्ली

पहला हिन्दी संस्करण
जनवरी, १९५८
दूसरा संशोधित हिन्दी संस्करण
१९६२
तीसरा हिन्दी संस्करण
१९७९

लेखक
विष्णु प्रभाकर

संपादक
श्री मुंशी

मूल्य : ३ रुपये ५० नये पैसे

जितेन सेन द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित ।

शरतचन्द्र

एक

एक था लड़का। हमारे तुम्हारे जैसा लड़का। बड़ा शरारती, बड़ा सीधा, बड़ा भोला। तुम सोचोगे कि एक लड़के में एक साथ इतनी बातें कैसे। हां भाई, वह था ही ऐसा। इस गांव से उस गांव, और गांव ही क्यों, जी में आया तो शहर भी पहुंच गया। बचपन में बड़े शौक थे, मसलन मछलियां पकड़ता था, तितलियां पकड़ता था। बंगाल में मछलियां पकड़ना बहुत साधारण बात है। उसने सुना था कि दूर एक गांव में मछली पकड़ने की अच्छी बंसिया मिलती है। लेकिन सवाल यह था कि वहां पहुंचा कैसे जाय। अकेले जाने की हिम्मत नहीं थी। तभी एक दिन अचानक गांव का नयन सरदार गाय खरीदने के लिए दादी से रुपये मांगने आया। वह उसी गांव जा रहा था। बस फिर क्या था, हमारे इस लड़के का मन खिल उठा। और

चुपके से बिना किसी से कुछ कहे, नयन सरदार के पीछे हो लिया। मजा यह कि हजरत ने नयन सरदार को भी कुछ नहीं बताया।

नयन सरदार बड़ा भारी लठैत था। लोग उससे बहुत घबराते थे। वह अकेले ही उस गांव की ओर चल पड़ा और यह लड़का भी छिप-छिप कर उसके पीछे चलता रहा। बहुत दूर जाने पर नयन सरदार को मालूम हुआ कि उसके पीछे एक बालक है। बेचारा परेशान। करे तो क्या करे? गांव से वे इतनी दूर जा चुके थे कि लौटना मुश्किल था। बेबस। अब उसे इस ८-९ साल के बालक को अपना साथी बनाना पड़ा। गांव में पहुंचे। पता नहीं इन हजरत को बंसिया मिली या नहीं, लेकिन गाय खरीदते-खरीदते नयन सरदार को रात पड़ गयी। आजकल का जमाना तो था नहीं। डाकुओं का बड़ा जोर था। अंधेरा हुआ नहीं कि रास्ते पर डाकू पड़े नहीं। लेकिन नयन सरदार तो पक्का लठैत था। वह डाकुओं से क्यों डरता? अकेले ही बालक को लेकर लौट पड़ा। जिस बात का डर था वही हुई। डाकुओं के एक दल ने रास्ते में उन्हें घेर लिया। ये निर्दयी दल के दल झाड़ियों के पीछे छिपे रहते थे। इनके पास बांस के छोटे-छोटे, पर भारी,

पावड़े भी होते थे। पथिकों के पैरों को निशाना बनाकर पीछे से पावड़ा दे मारते। चोट खाकर बेचारा पथिक सड़क पर गिर पड़ता और तब वे पीछे आकर लाठिओं से मार-मार कर उसकी जान निकाल डालते। लेकिन जैसा कि हमने कहा नयन सरदार तो लठैत था न, और फिर बालक साथ था। अकेले ही डाकुओं के दल को मार भगाया।

था न वह बालक साहसी?

और सुनोगे? अच्छा और सुनो उसके साहस की बात। जब वह बालक कुछ बड़ा हुआ, थोड़ा-बहुत पढ़-लिख गया तो उसके हाथ एक किताब लगी। किताब का नाम था "संसार-कोश"। उसमें संसार भर की बातें लिखी हुई थीं। उस लड़के ने उन बातों को पढ़ा और मान लिया कि वे सब सच हैं। भला किताब में लिखी हुई बातें भी झूठ होती हैं? उस किताब में बहुत सारे मंत्र लिखे हुए थे। मुसीबत से बचने का भी एक मंत्र था। बस, इस लड़के को तो जैसे राम मिल गये। उस मंत्र को उसने खूब अच्छी तरह याद कर लिया और अपने सब साथियों को भी याद करा दिया। मंत्र था : ओम् ह्रीं द्युं द्युं रक्ष रक्ष स्वाहा।

"संसार कोश" में यह भी लिखा था कि यदि बेल की जड़ को हाथ में लेकर किसी सांप को पकड़ा जाय

तो वह सांप, चाहे कितना भी जहरीला हो, फौरन बस में हो जायेगा। बस, अब क्या था। यह हजरत कहीं से बेल की जड़ ले आये और निकल पड़े सांप की तलाश में! बहुत तलाश करने के बाद कहीं एक छोटा-सा सांप दिखायी दिया। उसको देखकर सारी थकान उतर गयी, साथियों को लेकर ऐसी किलेबंदी की कि बेचारा सांप भागे तो किधर भागे। पर सांप तो ठहरा सांप, भागने का रास्ता नहीं मिला तो फण उठाकर खड़ा हो गया। असली गोखरु था। लेकिन यह लड़का भी क्यों डरता। हाथ में बेल की जड़ थी और जबान पर वह मंत्र। बस निडर होकर वह आगे बढ़ा और हाथ बढ़ाकर जड़ सांप के फण के सामने कर दी। मन में हुआ सांप अब गिरा, तब गिरा। लेकिन यह क्या? बजाय गिरने के सांप तो बड़े जोर से फुंकार उठा। तीव्र क्रोध में भरकर उसने बेल की जड़ को कई बार डस लिया। बड़ी मुसीबत। लड़का एकदम हताश हो गया और तभी एक बड़े लड़के ने आकर लाठी मार-मार कर उस सांप की जान निकाल डाली। अभी कुछ दिन पहले ही तो एक सांप ने सचमुच इस बालक को काट खाया था और बड़ी कठिनता से उसकी जान बच सकी थी।

यह शरारती बालक कभी-कभी ऐसा गायब होता

कि कहीं पता ही नहीं लगता। साथी खोज-खोज कर परेशान हो जाते तो देखते कि वह चुपके से आकर दल में शामिल हो गया है। कोई कहता कि तुम कहां गये थे तो कह देता, तपोवन गया था। लेकिन वह तपोवन कहां था, यह वह किसी को न बताता। एक बार उसके एक साथी ने बहुत जिद की। उम्र में वह कुछ छोटा था, लेकिन वैसे लगता था मामा। बड़ी कठिनता से वह बालक अपने इस मामा को इस तपोवन में ले गया। एक टूटे हुए मकान के उत्तर में ठीक गंगा के पास, एक कमरे के नीचे नीम और करौंदे के पेड़ इस तरह झुके हुए थे कि वहां बिल्कुल अंधेरा हो गया था। उस पर चारों ओर से लताओं ने उस जगह को इस तरह से घेर रखा था कि कोई आदमी उसमें घुसने की सोच भी नहीं सकता था। बड़ी सावधानी से उन लताओं को हटाकर वह लड़का उसके भीतर घुसा। वहां थोड़ी जगह थी, साफ-सुथरी भी थी। हरी-हरी लताओं में से छनकर सूरज की किरणें इस तरह अन्दर आ रही थीं कि रोशनी बड़ी सुख देने वाली लगती थी। मन एकदम शान्त हो जाता था। वहीं पर एक बड़ा-सा पत्थर रखा हुआ था। बालक उसी पत्थर पर पालथी मारकर बैठ गया। बड़े प्यार से उसने अपने साथी को

बुलाया। बेचारा डरते-डरते पास जाकर उसी पत्थर पर बैठ गया। नीचे गंगा की धारा बह रही थी। दूर, उस पार सब कुछ साफ-साफ दिखायी दे रहा था। धीमी-धीमी शीतल वायु उन दोनों बालकों के तन-मन को छूने लगी। जरा-सी देर में साथी का डर दूर हो गया। बोला : "यह तो बड़ी सुन्दर जगह है। सचमुच तपोवन है।"

बालक ने कहा : "इस जगह आकर बैठना मुझे बहुत भला लगता है। यहां बैठकर मैं न जाने क्या-क्या सोचा करता हूँ। लेकिन तू यहां कभी अकेला न आइयो।"

साथी ने पूछा : "क्यों ? कोई डर है ?"

बालक ने कहा : "हां, हां, यहां सांप रहते हैं, समझा ?"

लेकिन तुम यह न समझ लेना कि इस बालक को पढ़ने-लिखने का शौक नहीं था। न, यह बात नहीं थी। इस बालक ने जहां शरारतें कीं, वहां इनाम भी जीता। पढ़ता तो ऐसा मन लगाकर पढ़ता कि बस सारी दुनिया को भूल जाता। जब यह बालक कालेज में पहुंचा तो खुद तो पढ़ता ही था, घर के दूसरे बच्चों को भी पढ़ाता था। कालेज में पहले साल की बात

है। परीक्षा का दिन आ पहुंचा था। इस लड़के ने सब छात्रों को बुलाया और कहा : "देखो, कल मेरी परीक्षा है। आज रात मैं तुमको नहीं पढ़ाऊंगा। मुझे परेशान मत करना। जो कुछ पूछना हो, कल आकर पूछना।"

गुरू का यह आदेश सुनकर छात्र चले गये और वह लड़का बैठ गया पढ़ने। दूसरे दिन सबेरे सब बच्चे गुरू के पास पढ़ने पहुंचे। दरवाजा बन्द था। डरते-डरते खोलकर अन्दर घुसे। देखा, अभी तक लालटेन जल रही है। उन बच्चों को देखकर वह बालक नाराज हो उठा। बोला : "परेशान करने के लिए आ गये न ! मैंने तुमसे कहा था कि आज नहीं पढ़ाऊंगा। जाओ, जाओ, कल सबेरे आना।"

बच्चे बेचारे हैरान, परेशान। डरते-डरते एक छात्र ने जवाब दिया : "सबेरा तो कभी का हो चुका है।"

अब उस बालक ने खिड़की खोलकर देखा तो सचमुच सूरज निकल आया था। बेचारा लजाकर रह गया। लेकिन देखा तुमने, पढ़ने की कैसी धुन थी उसमें ? पूरी रात बीत गयी और उसे पता ही नहीं लगा। तुम मन में सोचते होगे कि कैसा अजीब बालक था वह ! हां, वह बड़ा अनोखा बालक था। छुटपन में

जब वह बहुत शरारत करता, तो उसकी मां उसे तो मारती ही, अपने कपाल को भी फोड़ती और कहती, "क्या करेगा यह लड़का, कैसे चलेगा इसका काम।"

तब उसकी दादी कहती : "बहू, तू इसे मत मार। मैं कहे देती हूं कि एक दिन इसकी मति फिर जायेगी और यह बहुत बड़ा आदमी बनेगा। मैं वह दिन देखने के लिए नहीं रहूंगी। लेकिन तू देख लेना, मेरी बात झूठ नहीं होगी।"

सचमुच वह लड़का बहुत बड़ा आदमी हुआ। उसकी दादी वह दिन देखने के लिए नहीं रही, उसकी मां भी नही रहीं, पिता भी नहीं रहे। लेकिन इसी कारण वह और भी बड़ा हुआ।

कौन था यह लड़का ?

यह लड़का था भारत का प्रसिद्ध लेखक 'शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय।' इसी की कहानी हम तुम लोगों को सुनाने जा रहे हैं। इसी का नाम एक दिन सारे भारत में चमक उठा था। भारत से बाहर भी चमक उठा था, आज भी चमक रहा है और तब तक चमकता रहेगा जब तक धूप में चमक है।

दो

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के जन्म से कुछ पहले अंग्रेजों का राज खूब जम गया था। तुमने १८५७ के विद्रोह की कहानी तो सुनी ही होगी। उस समय पहले-पहल सारे देशवासियों को पता लगा कि दासता क्या है। तब देश भर में आजादी की आग सुलग उठी थी। लेकिन अभी शायद वे पूरी तरह उसकी कीमत पहचान नहीं पाये थे, इसलिए वे सफल नहीं हो सके। फिर भी वह आग बुझी नहीं, सुलगती ही रही और एक दूसरे रूप में चमकती भी रही।

बतायें, कैसे चमकती रही ? नाम सुना है तुमने राममोहन राय का, केशवचन्द्र सेन का, दयानन्द सरस्वती का, रामकृष्ण परमहंस का, महादेव गोविन्द रानाडे का ? इन लोगों ने आजादी की लड़ाई गोलियों से नहीं लड़ी, लेकिन विचारों से लड़ी। विचारों के

भी हाथ-पैर होते हैं। हां, वे भी चलते हैं, काम करते हैं। लेकिन वे हमें दिखायी नहीं देते, चुपचाप हमारे भीतर एक ज्योति जगाये रहते हैं और काम करने की सूझबूझ देते रहते हैं। इन महापुरुषों ने यही काम किया। उन लोगों ने देखा कि दुनिया बहुत आगे बढ़ी जा रही है और हम दासता में पिसे हुए, अपने को भूले हुए नीचे ही नीचे जा रहे हैं। उन्होंने इसका कारण खोजा। हम में जो कुरीतियां आ गयी थीं, जो दुर्गुण पैदा हो गये थे, उनके बारे में हमें चेताया। कहा : "बड़ा भारी तूफान आ रहा है, उसमें खतरा है। उस तूफान से लड़ो, खतरे का सामना करो। तुम लोग इसी धरती के बेटे हो, इस धरती को पहचानो।"

जिस समय शरत पैदा हुए, उस समय चारों तरफ यही आवाज गूंज रही थी। लोग जाग रहे थे। नारी-जाती जाग रही थी, अछूत जाग रहे थे, किसान जाग रहे थे। सच तो यह है कि सभी भारतवासी जाग रहे थे।

ऐसे जागरण के समय सन १८७६ में, सितम्बर महीने की १५ तारीख को शरतचन्द्र का जन्म हुआ। उस दिन पूर्णिमा थी। पूर्णिमा को चांद पूरा निकलता है। 'शरतचन्द्र' नाम भी चांद की याद दिलाता है।

लेकिन जहां इतनी अच्छी बातें थीं, वहां एक खराब बात भी थी। इस साल बड़ा भयंकर अकाल पड़ा था। सच मानो, यह अकाल बहुत वर्षों तक शरतचन्द्र को परेशान करता रहा। और वह इससे जूझते रहे, संघर्ष करते रहे। और इसी संघर्ष में से लेखक शरतचन्द्र का जन्म हुआ।

जिस गांव में उनका जन्म हुआ उसका नाम है देवानन्दपुर। हुगली जिले का एक छोटा-सा गांव, उन दिनों तो बहुत ही छोटा था। लेकिन छोटा हुआ तो क्या, इसी गांव में तो बंगाल के प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र का जन्म हुआ था। इसी गांव के पश्चिम की ओर सरस्वती नदी बहती है और प्राचीन काल के सात गांवों में भी इसका नाम आता है।

देवानन्दपुर वैसे शरत के बाप-दादों का गांव नहीं था। वहां उनकी ननसाल थी। इसकी भी एक कहानी है। शरतचन्द्र के दादा बड़े निडर थे। और वह जमाना जमींदारों का था। जमींदारों के जुल्म की कहानियां तो तुमने बहुत सुनी होंगी। किसी बात पर शरत के दादा ने किसानों का पक्ष लेकर जमींदार का विरोध किया। बस, उन्हें घर छोड़ना पड़ा। इतना ही नहीं। बाद में एक दिन उनका कटा हुआ सिर एक घाट पर पड़ा मिला।

कोई और होता तो बुरी तरह घबरा जाता। लेकिन शरत की दादी नहीं घबरायीं। वह गांव वालों से सलाह करके रातों-रात भाई के पास चली गयीं। इसी देवानन्दपुर गांव में उनके भाई का घर था। उस समय शरत के पिता बालक थे। उनका नाम मोतीलाल था। शरत की दादी ने बड़े साहस के साथ अपनी रक्षा की और अपने बेटे को पाला।

उस समय के चलन के अनुसार मोतीलाल का विवाह बचपन में ही हो गया था। विवाह के बाद मोतीलाल की विधवा मां ने बेटे को शिक्षा के लिए ससुर के घर भागलपुर भेज दिया। भागलपुर बिहार में है। शरत के नाना केदारनाथ गांगुली बड़े आदमी थे। शरत के पिता धनी नहीं थे, परन्तु थे कुलीन। उन दिनों विवाह के लिए धन नहीं देखा जाता था, कुल देखा जाता था। इसीलिए केदारनाथ ने अपनी दूसरी कन्या भुवनमोहिनी का विवाह मोतीलाल के साथ कर दिया। मोतीलाल अधिक न पढ़ सके। पर दिल उनका बहुत बड़ा था। प्यार भी खूब करते थे, लेकिन काम करना नहीं जानते थे। बस सपने ही देखा करते थे। वह कलाकार बनने के लिए थे, पर बेचारे ससुराल में आकर पिंजरे में बन्द हो गये।

बात यह थी कि गांगुली लोग बड़े कट्टर थे। धर्म के नियमों का बड़ी कठोरता से पालन करते थे, और जो ऐसा नहीं करता था, उसे कठोर दंड मिलता था। इसके अतिरिक्त तुम जानते ही हो कि ससुराल में रहने वाले दामाद की क्या हालत होती है। बेचारे मोतीलाल के साथ भाग्य ने मानो यही परिहास किया।

लेकिन उनमें और भी बहुत गुण थे। बड़े प्यार से वह बच्चों को सुन्दर अक्षर बनाना सिखाया करते थे। बहुत बढ़िया चित्रकार थे। लेकिन वह कभी कोई चित्र पूरा नहीं कर सके। जब तक मन करता चित्र बनाते, जब मन न होता तो उसे छोड़ देते। वह बहुत सुन्दर लिखते थे। उन्होंने कहानियां लिखीं, उपन्यास भी लिखे। लेकिन वही पुराना रोग। कभी किसी रचना को पूरा नहीं कर सके।

शरत लड़कपन में अपने पिता की रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ते। लेकिन अन्त तक आते-आते झुंझला उठते : "पिता जी ने यह कहानी पूरी क्यों नहीं की ? पिता जी किसी चीज को पूरा क्यों नहीं करते ?"

तो तुमने देखा ! उनके पिता कितने बड़े, लेकिन कितने असफल थे। संसार का काम सपने देखकर नहीं हो सकता। यहां तो इस धरती पर चलना पड़ता है, इस धरती का काम करना पड़ता है।

तो फिर शरत के पिता कैसे जीते थे ? शरत की मां के कारण। मां हमेशा महान् होती है। लेकिन शरत की मां और भी महान् थीं। वह सुन्दर नहीं थीं। लेकिन स्वभाव उनका इतना सुन्दर था, इतना मीठा था, इतना सरल था कि बस, उनकी पूजा ही की जा सकती थी। फिर, वह काम भी बहुत करती थीं। घर चलाती थीं, घर चलाने की सामग्री भी जुटाती थीं। दुनिया की भाषा में—अपने निकम्मे पति का काम वही करती थीं। कभी-कभी वह नाराज भी होतीं। पर इन सब बातों के होते हुए भी वह अपने पति को बहुत प्यार करती थीं। जानते हो इसका क्या कारण था ? इसका कारण यह था कि मोतीलाल बच्चों को बहुत प्यार करते थे। बच्चों में वह बच्चे बन जाते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि वह बच्चों के साथ गंगा के किनारे खेल रहे थे। तभी आ गये उनके बड़े साले। बड़े नाराज़ हुए, बच्चों को डांटा-फटकारा और फिर उनकी परीक्षा लेने लगे। एक बालक संस्कृत भाषा के किसी प्रश्न का ठीक उत्तर न दे सका। बस, इसी बात पर उसको खूब पीटा और एक कोठरी में बन्द कर दिया। न खाना, न पीना ! रोता-रोता बेचारा बालक सो गया। लेकिन मोतीलाल कैसे सोयें ? पैसा कमाने

की विद्या उनको नहीं आती थी, लेकिन उनकी छाती के भीतर ममता का सागर भरा हुआ था। वह उमड़ उठा। पीछे से खिड़की खोलकर चोरी-चोरी उस बालक को उन्होंने खाना पहुंचाया। जब उसे छुट्टी मिली तो रंग-बिरंगे फूलों की माला बनाकर उसके गले में डाली। उसे रिझाया, हंसाया, तब जाकर कहीं उनका मन शान्त हुआ।

ऐसे आदमी को भला कौन बालक प्यार न करेगा ? यही हालत शरत की मां की थी। उनको तो बड़े-छोटे, पास-पड़ोस के, सभी प्यार करते थे। घर भर में किस को किस चीज की जरूरत है, कौन किस वक्त खाना खाता है, किस का बच्चा किस समय सोता है, इन सब बातों का ध्यान भुवनमोहिनी रखती थीं। सबको खिलाकर वह खातीं, सबको सुलाकर वह सोतीं।

तीन

शरत बचपन में अपने गांव के स्कूल में ही पढ़ते थे । तब का हाल उन्होंने इस प्रकार लिखा है :

"बचपन की बात याद है । गांव में मछली का शिकार करता, डोंगियों को ढकेलता और नाव खेता था । इस प्रकार दिन कटते थे । कभी-कभी यात्रा के दल में जाकर शामिल हो जाता और फिर उससे भी जब जी ऊब जाता तो अंगौछा कन्धे पर डालकर निकल पड़ता । जब वह यात्रा खतम हो जाती तो एक दिन घायल पैरों को लेकर घर लौट आता । वहां पहले तो खूब आवभगत होती और फिर पाठशाला में चालान कर दिया जाता । वहां फिर एक बार आवभगत होती और बाद में पढ़ने में दिल लगाता । फिर एक दिन सबके सामने की हुई प्रतिज्ञा भूल जाता और फिर यात्रा पर निकल पड़ता । फिर लौटता, फिर एक बार आव-

भगत होती और इस प्रकार 'बोधोदय' और 'पद्यपाठ' पढ़ते-पढ़ते बचपन का एक युग बीत गया ।"

फिर इनकी मां इन्हें अपने पिता के यहां भागलपुर ले गयीं । शरत के पिता कुछ कमाते थे नहीं, इसलिए गांव में गुजर कैसे होती । वहां शहर के स्कूल में बालक शरत को कई किताबें पढ़नी पड़तीं । और फिर पण्डित जी के सामने खड़े होकर परीक्षा भी देनी होती । बेचारे शरत रो-रो पड़ते । उन्हें ऐसा लगता कि पढ़ाने का उद्देश्य बस रुलाना ही है । लेकिन बहुत जल्दी ही उन्हें इस बात का पता लगा कि उन्हें कुछ नहीं आता ! थे बड़े अभिमानी ! भला इस बात को कैसे सहते कि उन्हें कुछ नहीं आता ! बस, पढ़ना शुरू कर दिया और देखते-देखते उनकी गिनती अच्छे लड़कों में होने लगी । आगे चलकर जब वह अंग्रेजी स्कूल में भर्ती हुए तो उन्हें डबल प्रमोशन मिला ।

पढ़ने के साथ-साथ शरत को अखाड़े का भी शौक था । उन दिनों खेलना-कूदना, कुश्ती लड़ना, भले लड़कों का काम नहीं समझा जाता था । लेकिन शरत इन बातों की चिन्ता करते तो शरत कैसे बनते ?

पड़ोस में एक मकान था । माना जाता था कि उसमें भूत रहते हैं । उसी मकान के आंगन में शरत ने

एक अखाड़ा तैयार किया और सब बच्चे छिपकर वहां कसरत करने लगे। शरत के मित्र भी बहुत थे। उनमें राजेन्द्र उर्फ राजू नाम का एक लड़का इनका बहुत बड़ा मित्र था। वह इनके सब भले-बुरे कामों का गुरू था। गाना-बजाना करता, नाव खेता, मछलियां पकड़ता, और मुसीबत में हर किसी का साथ देता। इसी से शरत ने गाना सीखा, लेकिन बांसुरी बजाना नहीं आया। हां, नाटक में अभिनय करना खूब आ गया। इस लड़के से शरत ने और भी बहुत कुछ सीखा। लेकिन बाद में एक दिन यह लड़का चुपचाप घर से निकल गया। फिर उसका कुछ पता नहीं लगा।

इधर इनके पिता भागलपुर में भी बहुत दिन न रह सके। घरेलू मामलों को लेकर रोज झगड़ा खड़ा हो जाता। आखिर ससुराल में घर-जमाई बनकर रहते थे। बेचारे फिर देवानन्दपुर लौटे। यहां शरत हुगली ब्रांच स्कूल में पढ़ने लगे और राजेन्द्र की दी हुई शिक्षा के कारण जल्दी ही लड़कों के सरदार बन गये। वह दुधारा छुरा लेकर फिरते थे। उसी के बल पर पोखर से मछली और बाग से फल चुराना उनके लिए बड़ा आसान था। लेकिन ये सब चीजें चुराकर वह अपने आप नहीं खाते थे, जो गरीब थे, जिनको इन चीजों

की जरूरत होती थी उनके घर पहुंचा आते थे। एक बार एक आदमी गरीबी के कारण इलाज नहीं करा सका। जान पर आ बनी। शरत को पता लगा। बस साथियों को लेकर मछली पकड़ लाये और उन्हें बेचकर उसके इलाज का प्रबन्ध किया।

इन कामों में यहां इनका साथी था सदानन्द नाम का एक लड़का। उसके घर वालों को जब इन बातों का पता लगा तो उन्होंने सदानन्द को आज्ञा दी कि वह कभी शरत से न मिले। लेकिन दोनों मिलने से न चूकते। सदानन्द के मकान के पास एक ऊंचा पेड़ था। उसी पर से सीढी लगाकर शरत मकान की छत पर पहुंच जाते। वहां शतरंज खेलते, रात को घूमने जाते और फिर घर लौटकर अच्छे लड़कों की तरह सो जाते।

शरत के पिता गांव लौट तो आये, लेकिन खायें तो कहां से खायें? बेचारी मां को मन मारकर एक दिन अपने पिता के घर लौटना पड़ा। फिर वही बेकद्री, फिर वही अपमान। जो कमायेगा नहीं, उसकी कद्र कौन करेगा? दूसरे गुणों को कौन देखता है? सोचो तो उन लोगों की क्या दशा हुई होगी!

यहां आकर शरत फिर स्कूल में भर्ती हुए और यहीं से अन्त में १८ साल की आयु में दिसम्बर सन १८९४ में उन्होंने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। इन्हीं

दिनों शरत ने साहित्य की ओर ध्यान दिया। जैसा कि शुरू में हमने कहा था, उनके पिता भी लेखक थे। लेकिन अपने अस्थिर स्वभाव के कारण वह कभी कोई रचना पूरी न कर पाये। शरत ने एक उपन्यास लिखा, पूरा किया और फिर फाड़ डाला, क्योंकि वह उनको पसन्द नहीं आया था। एक-एक करके कई रचनाएं उन्होंने इसी तरह फाड़ डालीं।

और यह फाड़ना अच्छा ही हुआ। वह आज के लेखक की तरह नहीं थे जो एक रद्दी-सी रचना करने के बाद अपने को महान लेखक समझने लगता है। लिखना तो साधना है और शरत सचमुच ही साधक थे। वर्षों तक चुपचाप उनकी साधना चलती रही।

शरत खूब पढ़ते भी थे। पुस्तकालय से सबसे अधिक पुस्तकें वही लाते। उन दिनों रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बहुत नाम था। शरत उनमें बहुत श्रद्धा रखते थे। अंग्रेजी के बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएं भी उन्होंने पढ़ी थीं। हेनरी उड के मशहूर उपन्यास 'ईस्टलीन' के आधार पर 'अभिमान' नामक एक उपन्यास भी लिखा। मेरी कायरेली के 'माइटी एटम' का बंगला में अनुवाद किया। इसके आधार पर एक कहानी 'पाषाण' भी लिखी। लेकिन इन चीजों को उन्होंने कभी छपवाया

नहीं। केवल नाम ही लोगों को याद रहे। तुरन्त कहानी बनाकर जनता का मनोरंजन करना उन्हें खूब आता था।

उनके नाना के परिवार में इन सब बातों को बुरा समझा जाता था। वे लोग तो बस यही जानते थे कि परीक्षा पास करो और वकील बनो। एक बार ऐसा हुआ कि उनके घर में एक रिश्तेदार आये जो इंगलैण्ड में रहकर पढ़े थे। एक दिन उन्होंने घर भर की औरतों को इकट्ठा किया और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता सुनायी। शरत उसको समझे या न समझे, लेकिन सुनते-सुनते उनकी आंखों में आंसू भर आये।

अपने लेखक बनने की बात शरत ने इस प्रकार लिखी है :

"इस परिवार के वकील बनने के वातावरण में जी घबड़ा गया और पुराने गांव के मकान में लौटा। पिता जी की टूटी हुई अलमारी खोलकर मैंने 'हरीदास की गुप्त बातें' और 'भवानी पाठक' नाम की पुस्तकें निकालीं। ये पुस्तकें पाठशाला में नहीं पढ़ायी जाती थीं। ये बुरे लड़कों के पढ़ने की पुस्तकें थीं, इसलिए चोरी-चोरी मैं इनको पढ़ता था।...फिर शहर लौटा तो बंकिम ग्रन्थावली का पता लगा। इनको मैंने इतनी

बार पढ़ा कि याद हो गयीं। इसके बाद 'बंगदर्शन' पत्रिका का युग आया। इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'आंख की किरकिरी' छप रही थी, उसे पढ़कर आंखें खुल गयीं। उस दिन मुझे जो कुछ अनुभव हुआ वह कभी नहीं भूलूंगा। उसे पढ़कर मुझे केवल साहित्य का ही नहीं, अपने मन का भी परिचय मिला।"

तुम सोचते होगे कि शरत भी कैसे थे : पहले दर्जे के खिलाड़ी, पहले दर्जे के लड़ाकू, पहले दर्जे के शरारती और पहले दर्जे के साधक। इतनी दूर गुल्ली फेंकते थे कि बस कुछ पूछो मत। लट्टू घुमाते, पतंग उड़ाते, मांझे को इतना तेज बनाते कि हरेक पतंग कटकर नीचे आ जाती। और लट्टू हाथ पर इस तरह घुमाते कि साथियों की आंखों के सामने धरती घूमने लगती।

लेकिन वह किसी भी वस्तु को अपने पास नहीं रखते थे। हर चीज को वह दे देते और देने में ही उनको आनन्द भी आता।

वह हर चीज को ध्यान से देखते, सोचते और समझते थे।

एक कहानी सुनाएं तुम्हें। जितना ही उन्हें पढ़ने-लिखने का शौक था उतना ही गाने-बजाने का भी शौक था और जो इस विद्या के गुरू थे उनकी सेवा

करने का भी शौक था। प्रसिद्ध गायक और सुलेखक स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ मजूमदार के घर वह अक्सर जाते। वहां पर संगीत और साहित्य की मजलिस जमती, चाय-पानी और तमाखू का दौर चलता। बालक शरत को खूब मजा आता। तब कोई १३-१४ साल की उम्र थी उनकी। सुरेन्द्र बाबू के बहुत से मित्र कलकत्ते में थे, वे अक्सर आकर उनके अतिथि बनते। उनमें जो गुणी होते, शरत उनकी बड़े प्रेम से सेवा करते थे। उन्हीं में एक सज्जन थे अघोर बाबू। एक दिन वह घाट पर जा रहे थे। शरत उनके साथ थे। तभी एक घर के भीतर से किसी स्त्री के रोने की आवाज आई। दिल दहला देने वाला रोना था वह। अघोर बाबू सहसा रुक गये। यह अघोर बाबू शरत के शिक्षक रहे थे, इसलिए शरत उनको 'मास्टर मोशाय' कहते थे। उन्होंने कहा : "मास्टर मोशाय, यह सचमुच का रोना है। इस स्त्री का स्वामी नेत्र-हीन था। लोगों के घर में काम-काज करके बेचारी स्वामी का पेट भरती थी। कल रात उसी स्वामी की मृत्यु हो गयी है। यह बहुत दुखी है। दुखी लोग बड़े लोगों के समान दिखाने के लिए नहीं रोते। उनका रोना हृदय को चीर देनेवाला प्राणों का क्रन्दन होता है।"

तेरह-चौदह साल के इस बालक के मुंह से रोने की यह व्याख्या सुनकर अघोर बाबू विस्मित हो उठे। कलकत्ते जाकर यह बात अपने एक मित्र से कही। मित्र ने उत्तर दिया : "जो बालक रोने के अनेक रूपों को पहचानता है वह साधारण बालक नहीं हो सकता। एक दिन मन के व्यापार पहचानने की विद्या में यह बालक बहुत प्रसिद्ध होगा।"

शायद ही कोई और भविष्यवाणी किसी काल में इतनी सत्य हुई होगी।

एक और कथा सुनाएं ?

कालेज में विज्ञान की परोक्षा थी। शरत के उत्तरों को पढ़कर परीक्षक हैरान रह गया। सोचा, हो न हो इस लड़के ने नकल की है। उसने शरत को बुलाया और फिर से नये प्रश्न पूछे। शरत ने उनके जो उत्तर दिये उन्हें सुनकर परीक्षक को शरत की अद्भुत स्मरण-शक्ति का लोहा मानना पड़ा।
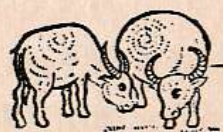
चार

दिसम्बर १८९४ में शरत ने प्रवेशिका की परीक्षा पास की। इसी वर्ष उन्होंने साहित्य सभा की स्थापना की, लेकिन वैसे उनका जीवन सुखी नहीं था। लगभग तीन वर्ष पहले इनके नाना की मृत्यु हो चुकी थी जिससे इनकी माता बड़े संकट में पड़ गयीं। अब तो पिता के घर रहना कठिन हो गया। अपना घर-बार सब पहले ही कर्ज की भेंट चढ़ चुका था। फिर भी जितने दिन वह जीती रहीं, किसी तरह काम चलाती रहीं। लेकिन शरत के प्रवेशिका परीक्षा पास करने के बाद, एक साल के भीतर ही वह भी चल बसीं। गरीबी से लड़ती-लड़ती वह थक गयी थीं। परिवार पर मानो वज्र टूट पड़ा हो। घरवाली के बाद मोतीलाल बिल्कुल बेघर हो गये। बस रास्ते में घूमते रहते। शरीर में धूल भरी रहती, सिर पर जटा बढ़ गयी। पेट में अन्न नहीं, हाथ में पैसे नहीं।

ऐसी अवस्था में शरत का क्या हुआ ?

दुनिया की दृष्टि में वह बिलकुल आवारा हो उठे। नाचना, गाना, नाटक—इन सब बातों में ही उनके दिन बीतने लगे। कुछ दिन पहले शरत के जीवन में एक और घटना घट चुकी थी। तब भागलपुर में बंगालियों में दो दल थे। एक कट्टर पोंगापंथियों का दल, जिसके नेता शरत के नाना-मामा थे, दूसरा सुधारक दल। इसके नेता थे राजा शिवचन्द्र बन्दोपाध्याय। यह विलायत हो आये थे। उन दिनों विलायत जाना पाप समझा जाता था। इसीलिए उन्हें समाज से बाहर निकाल दिया गया। बेचारों ने कई बार प्रायश्चित करना चाहा, लेकिन कट्टरपंथियों ने नहीं माना। निराश होकर उन्होंने सुधारकों का दल बनाया। पैसे वाले आदमी थे, छुआछुत का विचार नहीं करते थे। बस, नौजवान लोग वहां जमने लगे। एक थियेटर पार्टी भी वहां मौजूद थी। शरत को अपने नाना के परिवार के साथ रहना चाहिए था, लेकिन वह मिल गये सुधारक दल के साथ। उस समय उनके मित्र राजू भी मौजूद थे। यहीं उन्होंने अभिनय करना सीखा। उनके अभिनय की बहुत प्रशंसा हुई। इतनी हुई कि विरोधी दल वाले घबड़ा गये। इसमें भाग लेने वाले सब लोगों को

उन्होंने जाति से बाहर निकाल दिया। शरत को भी निकाल दिया गया। उनके नाना के परिवार में जगतधात्री देवी की पूजा होती थी। भागलपुर के सारे बंगाली इकट्ठे होते थे। शरत, जैसा कि उनका स्वभाव था, अतिथियों की बहुत सेवा करते थे। लेकिन इस

तरुण शरत

बार शरत को वहां देखकर वे लोग आग-बबूला हो उठे। उन्होंने कह दिया कि यदि शरत ने खाना परोसने में हाथ लगाया तो वे लोग इस घर में पानी भी नहीं पियेंगे।

क्या परिणाम हुआ ?

वही जो होना चाहिए था। रिश्ते के एक नाना ने उनसे वहां से चले जाने को कहा। भावुक तो थे ही, सब कुछ छोड़-छाड़ कर घर से भाग गये। छ: महीने बाद लौटे। एफ. ए. की परीक्षा सिर पर थी, लेकिन वह उसमें नहीं बैठ सके। कहा जाता है कि फीस के पैसे नहीं जुटा पाये थे। हो सकता है। गरीब तो थे ही। परन्तु बहुत से लोग मानते हैं कि आवारागर्दी और नाटक-थियेटर आदि में लगे रहने के कारण कालेज के अधिकारियों ने उन्हें परीक्षा में नहीं बैठने दिया। कुछ भी हो, उनकी पढ़ायी यहीं समाप्त हो गयी। कुछ दिन तक वह फिर नाटक-थियेटरों में लगे रहे। लेकिन ऐसे कब तक चलता, पिता तो कुछ कर नहीं सकते थे। भाई-बहन छोटे थे। विवश होकर शरत ने वानली इस्टेट में नौकरी कर ली। उस समय सन्थाल परगना में सैटलमैण्ट का काम चल रहा था। एक बड़े कर्मचारी स्टेट के स्वार्थ की देखभाल करते थे। इनका नाम था शिवशंकर साहू। वह संगीत के प्रेमी थे। शरत इनके सहकारी थे। इन्होंने यहां बन्दूक चलाना सीखा। उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता था। उड़ते पक्षी का शिकार करते थे। लेकिन शरत यहां भी

अधिक दिन नौकरी न कर सके। बेकार होकर उन्होंने इस बार पुस्तक पढ़ने में मन लगाया और खूब लिखा भी। लिखने-पढ़ने का काम वह अपने मित्र पूंटू के घर करते थे। पूंटू उनके मित्र विभूतिभूषण भट्ट का प्यार का नाम था। स्वयं शरत का घर का क्या नाम था ?

उनका नाम था 'न्याड़ा' !

इन दिनों वह पिता के साथ भागलपुर के खंजरपुर मोहल्ले में रहते थे। पिता को नाना प्रकार के पत्थर इकट्ठे करने का शौक था। नाना प्रकार के रंग-रूपों के मूल्यवान और दुर्लभ पत्थरों से उनका सन्दूक भर गया था। एक दिन ऐसा हुआ कि पिता के पीछे वह उन पत्थरों को उठा ले गये और अपने एक धनी मित्र के पास गिरवीं रख आये। उनका एक दूसरा मित्र मुसीबत में फंस गया था। उसी को बचाने के लिए उन्होंने ऐसा किया था। रुपये लेकर मित्र को दे दिये।

शरत के पिता को पता लगा। वह बहुत नाराज हुए। घर से निकल जाने को कह दिया। शायद पिता ने पुत्र को जीवन में पहली बार धमकाया था। वह अपनी सन्तान का लालन-पालन नहीं कर सके, लेकिन प्यार उन्होंने बेहद किया। ऐसा पिता अगर अपने पुत्र को डांटे तो क्या हो ? दिल टूट जाये न ! फिर, शरत

ठहरे भावुक। दिल पर बहुत चोट लगी। उन्होंने जीवन में बड़े-बड़े अपराध किये थे, पर पिता ने कभी उनको दण्ड नहीं दिया था। भला पत्थरों के लिए वह क्यों उसे पत्थर मार रहे थे? बस, वह कुछ बोले नहीं। उसी दिन उन्होंने घर छोड़ दिया। एक बार फिर वह इस संसार में भटकने लगे। सन्यासी का रूप धारण करके नागा साधुओं के साथ दूर-दूर तक घूमते रहे।

तुम उनकी रचनाएं पढ़ो तो देखोगे कि शरत ने पाखण्डी साधुओं के पाखण्डी जोवन की विस्तार से चर्चा की है। उस जीवन को उन्होंने अपनी आंखों से देखा था।

'श्रीकान्त' उपन्यास में श्रीकान्त भटकते-भटकते एक दिन आम के एक बाग में पहुंचा तो देखा: "यह तो अच्छा खासा सन्यासी का आश्रम है। प्रकांड धूनी के ऊपर लोटे में चाय का पानी चढ़ा हुआ था। बाबा जी आधी आंख खोले सामने ही विराजमान थे और उन्हीं के आसपास गांजा पीने के सब साधन थे। एक बच्चा सन्यासी एक बकरी दुह रहा था। यह दूध चाय की भिक्षा में लगने वाला था। दो ऊंट, दो टट्टू तथा बछड़े समेत एक गाय पास ही बंधी खड़ी थी। पास ही

एक तम्बू भी लगा हुआ था। मैंने जो जरा निगाह दौड़ाकर देखा तो मेरी उम्र का एक चेला भांग छान रहा था। देखकर मैं भक्ति से गदगद हो गया और पलक मारते ही बाबा जी के श्री चरणों में लोट गया।"

तो देखा तुमने कि वह कल्पना बिहारी नहीं थे। इसी धरती पर उन्होंने आंखें खोलकर जो कुछ देखा वही हमें कल्पना लोक की कहानी जैसा लगता है, क्योंकि हम अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहते हैं, और कुएं के मेढक की तरह मान लेते हैं कि दुनिया इतनी ही है।

कई महीने बाद साधु के वेश में वह एक दिन मुजफ्फरपुर पहुंचे। जानने वाले कहते हैं कि एक दिन उनके क्लब में एक तरुण सन्यासी आया। शुद्ध हिन्दी में उसने लिखने का सामान मांगा और फिर बच्चों ने कौतूहल में देखा कि वह सन्यासी बंगाली के छापे जैसे अक्षरों में पत्र लिख रहा है। बस, फिर क्या था। शरत पकड़े गये।

यहीं पर उनका प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती अनुरूपा देवी से परिचय हुआ। उनके एक देवर मुजफ्फरपुर में रहते थे। गाने-बजाने का बड़ा शौक था। वह एक

दिन शरत का गाना सुनकर उनको धर्मशाला से अपने घर ले गये। फिर तो लगभग दो महीने तक वह यहां रहे। यहां उनके लोकप्रिय होने का कारण था उनकी सेवा करने की भावना। वे रोगी, जिनका कोई नहीं था, उनके शरत थे। उनकी वह जी-जान से सेवा करते थे। जो असहाय व्यक्ति मर जाते, उनका वह निकट के सम्बंधी के समान संस्कार करते थे। यहीं पर रहते हुए उनका एक युवक जमींदार महादेव साहू से परिचय हुआ और कुछ दिन बाद वह उन्हीं के पास जाकर रहने लगे। शिकार, शराब, महफिली जीवन—यह तो जमींदारों की विशेषता थी। शरत ने इस जीवन का परिचय यहीं पाया। महादेव साहू से भी उनका परिचय संगीत के कारण हुआ था। यहां रहते हुए शरत ने एक उपन्यास भी लिखा जिसका नाम था "ब्रह्मदैत्य"। यह उपन्यास इन्हीं साहू साहब के पास रह गया और फिर कभी मिला भी नहीं।

१९०१ के अन्त में शरत पिता से झगड़कर भागे थे। १९०२ के अन्त में पिता की मृत्यु हो गयी। उस समय वह यहीं महादेव साहू के पास रहते थे। समाचार पाकर वह तुरन्त भागलपुर पहुंचे। उन्हें बहुत दुख था कि वह अन्तिम समय अपने पिता से बातें भी नहीं कर

सके। फिर अन्तिम संस्कार करने के लिए जेब में एक पाई भी नहीं थी। कोई उनका सहायक नहीं था। तब अपनी एकमात्र सम्पत्ति साइकिल उन्होंने बेच दी और पिता का अंतिम संस्कार किया।

बस, अब इस संसार में वह थे और थे उनके तीन छोटे भाई-बहन। कोई सहारा नहीं, पेट भरने के लिए कोई वसीला नहीं। खंजरपुर के जिस मकान में उनके पिता रहते थे उसकी मालकिन उनकी सबसे छोटी बहन सुशीला को बहुत प्यार करती थी। इसलिए अपनी छोटी बहन को उन्होंने वहीं छोड़ दिया। दोनों भाइयों को भी इधर-उधर रिश्तेदारों के पास छोड़कर वह स्वयं नौकरी की तलाश में कलकत्ता पहुंचे। कलकत्ते में रिश्ते के एक मामा वकील थे, शरत उन्हीं के पास रहने लगे।

लेकिन आवारागर्दी का जिन्हें चस्का लग गया था वह शरत ऐसे बंधकर कैसे रहते? फिर काम भी बड़ा नीरस था। हिन्दी के कागज-पत्रों का अंग्रेजी में अनुवाद करना, घर के लिए तरकारी आदि खरीदना, उस पर रिश्तेदारों के घर अनाथ की तरह रहना। एक उदाहरण देना काफी होगा। एक दिन शरत ने मामा के कंधे से अपने बाल ठीक कर लिये। तभी आ

गये मामा। उन्होंने नफरत से शरत की ओर देखा और कंघे को उठाकर गली में फेंक दिया। शरत यह न सह सके।

तभी अचानक एक विचित्र घटना घटी। उनके कई रिश्तेदारों और मित्रों को एक धुन सवार हुई कि हारमोनियम खरीदा जाय। लेकिन पैसा कहां से आये? एकाएक उन्हें शरत का ध्यान आया कि क्यों न शरत से कहानी लिखायी जाय और प्रतियोगिता में भेजी जाय।

उन दिनों एक प्रतियोगिता चलती थी। उसका नाम था 'कुन्तलीन'। वह स्वदेशी का युग था। इसी नाम का एक स्वदेशी तेल बाजार में तभी आया था। उसी के प्रचार के लिए यह प्रतियोगिता थी।

इस प्रतियोगिता में जो कहानी सबसे अच्छी मानी जाती उसे पुरस्कार मिलता था। शरत के मित्रों ने उनका लोहा मान लिया था और उन्हें विश्वास था कि शरत जो कुछ लिखेंगे वही सबसे अच्छा होगा। लेकिन शरत को यह विश्वास नहीं था। कहने पर उन्होंने कहानी लिखी तो, लेकिन अपने नाम से नहीं भेजी। अपने मामा सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय के नाम से भेजी। इस गल्प का नाम था 'मंदिर'। बाद में इसी

गल्प पर वह पुरस्कार मिला। लेकिन तब शरत कलकत्ते में नहीं थे। रंगून चले गये थे।

लगभग सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने लिखना शुरू किया और छब्बीस की आयु में वह रंगून गये। बीच के इन नौ वर्षों में उन्होंने बहुत कुछ देखा, सहा, और लिखा। उनकी बहुत बड़ी कहानियां और उपन्यास, जो बाद में बहुत प्रसिद्ध हुए, इन्हीं दिनों में लिखे गये थे: जैसे 'बोझा', 'चन्द्रनाथ', 'देवदास' और 'बड़ी दीदी' आदि। एक ओर जहां उन्होंने आवारागर्दी की, थियेटर में नाटक खेले, वहां साहित्य-सभा की स्थापना भी की। उसके जो सदस्य थे उनमें से अनेक बाद में प्रसिद्ध लेखक हुए।

कविता-कहानी लिखना इस साहित्य-सभा का प्रधान काम था। रवीन्द्रनाथ के काव्य की आलोचना भी की जाती थी। शरत ने शुरू में प्रसिद्ध लेखकों की तरह कविता करनी शुरू की। बहुत कोशिश की। लम्बे-लम्बे बाल भी रखे। रवीन्द्रनाथ के बाल लम्बे थे न, और रवीन्द्रनाथ उनके आदर्श थे। लेकिन उनकी प्रतिभा कविता के अनुकूल न थी, इसीलिए वह गद्य लिखने लगे।

अपनी एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द की वह उसी

प्रकार साधना करते थे जिस प्रकार कवि करता है। एक भी शब्द यदि उनकी रुचि के अनुसार न होता तो उसे काट देते और तब तक चैन से न बैठते जब तक रुचि के अनुसार दूसरा शब्द न ढूंढ़ लेते।

शरत साहित्य-सभा के सभापति थे। वह विषय देते और सात दिन के अन्दर लोग अपनी-अपनी रचनाएं उनके सामने पेश करते। शरत उनको जांच-कर नम्बर देते थे और सब भावी लेखक बिना किसी विरोध के उनके निर्णय को स्वीकार कर लेते थे।

पांच

सन १९०३ की बात है।

शरत अपने रिश्ते के एक मामा की सहायता से रंगून की ओर रवाना हुए। रंगून में शरत के एक दूर के रिश्ते के मौसा रहते थे। बहुत पहले उन्होंने शरत के पिता से कहा था : "शरत को मेरे पास भेज दो, कुछ सिखा-पढ़ा कर मैं उसे वकील बना दूंगा। वह यहां बहुत पैसा कमा सकेगा।" लेकिन उनके मामा का परिवार तो बड़ा कट्टर था। तब समुद्र यात्रा पाप समझा जाता था। सो शरत तब तो बर्मा न जा सके। लेकिन अब चारों ओर से असहाय होकर वह रंगून पहुंचे।

मौसा ने शरत का बहुत सत्कार किया। वह वहां रहकर अगले जीवन की तैयारी करने लगे। मौसा जी का यहां बहुत दबदबा था। उन्होंने शरत

से कहा : "बर्मी भाषा पढ़ो। मैं तुम्हें वकील बना दूंगा।"

लेकिन शरत बर्मी भाषा की परीक्षा पास नहीं कर सके और वकील बनने से रह गये। उन्होंने रेलवे के दफ्तर में नौकरी कर ली। लेकिन नौकरी भी वह अधिक देर न कर सके। रंगून आने के दो वर्ष बाद ही, जनवरी १९०५ में, उनके मौसा की मृत्यु हो गयी। शरत फिर असहाय हो गये।

एक बार फिर उन्होंने साधु वेष धारण किया। बर्मा में बौद्ध लोग रहते हैं, वह भी बौद्ध-भिक्षु बनकर इधर-उधर घूमने लगे। लगभग पांच छः महीने तक यही रहा—कभी साधु, कभी नौकरी, कभी आवारगी।

वह कुली-मजूरों और दूसरे छोटे तथा बदनाम लोगों के साथ रहे। लेकिन वह चरित्र से नहीं गिरे। सबसे स्नेह का बर्ताव करते, उनके आपस के झगड़े निबटाते, बीमारों को होमियोपैथी की दवाएं बांटते और उनकी चिट्ठी-पत्रियां लिख देते। गरीबों के साथ रहते हुए उन्होंने कभी किसी को यह नहीं मालूम होने दिया कि वह बहुत पढ़े-लिखे हैं और ऊंचे कुल के व्यक्ति हैं।

अन्त में, जुलाई १९०५ में, उनका लुका-छिपी का

यह खेल समाप्त हुआ और वह रंगून में आकर नौकरी करने लगे। अप्रैल सन् १९१६ तक नौकरी करते रहे। १३-१४ साल के इस काल में उन्होंने बर्मा को बहुत देखा, बर्मा में रहने वाले बंगालियों से भी उनका परिचय हुआ। पर वह शर्मीले थे, बहुत कम लोगों से मिलते थे। इस सब की चर्चा उनके उपन्यासों में खूब मिलती है। हां, संगीत, शिकार और बिलियर्ड के कारण वह काफी लोकप्रिय थे। उनका स्वर बड़ा मीठा था, उनके गुण, उनका बातचीत करने का ढंग ऐसा था कि जो कोई उनसे मिलता प्रेम किये बिना नहीं रह सकता था।

रंगून पर ताऊन का हमला हुआ। शरत के अनुभव अभी पूरे नहीं हुए थे। दफ्तर के बाबुओं का एक मैस था, शरत उसी में जाकर रहने लगे। इसी मैस में शरत का एक मित्र से परिचय हुआ। नाम था उनका बंगचन्द्र दे। जितने गुणी, उतने ही चरित्रहीन। शरत इनके साथ रहकर जहां ज्ञान की बातें करते, वहां शराब भी खूब पीते। सच तो यह है कि इन दिनों का उनका जीवन बड़ा खराब था। शरत ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' में इस जीवन की झलक मिलती है।

लेकिन शरत चाहे जितने भी नीचे गिर गये हों, उनमें जो गुण थे वे नहीं मिटे। बंगचंद्र बाद में ताउन

से मरे और उस समय शरत ने खाना-पीना, सोना, सब-कुछ छोड़कर उनकी जो सेवा की उसका बखान नहीं किया जा सकता। उनकी गोद में ही बंगचन्द्र ने प्राण दिये और उनकी मृत्यु से इन्हें इतना दुःख हुआ कि इन्होंने संगीत की चर्चा करना ही छोड़ दिया।

इन्ही दिनों उनके जीवन में एक और अद्भुत घटना घटी। वह जिस घर में रहते थे, वह दुमंजिला था, नीचे के तल्ले में कलकत्ते का एक मिस्त्री रहता था। जाति का चक्रवर्ती ब्राह्मण था। परिवार में उसके बस एक लड़की ही रह गयी थी। था वह बड़ा दुराचारी। शाम को उसके मकान में शराबियों की भीड़ जुड़ती। देर तक हो-हल्ला मचा रहता। बेचारी लड़की उनकी तरह-तरह की फरमाइशें पूरी करते-करते परेशान हो उठती।

शरत उन दिनों बहुत रात पड़े घर लौटते थे। एक दिन लौटकर क्या देखते हैं कि घर का दरवाजा अन्दर से बन्द है। समझा, आज तो कोई चोर आ गया है। बहुत पुकारने और खटखटाने पर दरवाजा खुला। लो, भीतर से चोर के स्थान पर निकली एक लड़की। कांपती, रोती ! हैरान होकर शरत ने पूछा : "क्या बात है ? तुम यहां क्यों आई हो ?"

लड़की ने बताया : "पिता बूढ़े घोषाल के साथ मेरा विवाह करना चाहते हैं। बदले में उन्होंने पैसे लिये हैं। वह बूढ़ा शराबी है और मुझे मारता है। आज मुझे लेने आया था। उसी के डर से भागकर मैं यहां आ गयी हूं।"

कहते-कहते लड़की ने शरत के पांव पकड़ लिए। रोती हुई बोली : "मुझे बचाइये।"

"डरो नहीं," शरत ने लड़की से कहा, "आज की रात तुम यहीं सोओ। सबेरे आकर मैं तुम्हारे पिता से बातें करूंगा।"

अगले दिन लड़की के पिता से उन्होंने बातें कीं। लेकिन वह तो दुष्ट था। बोला : "लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह करना ही चाहिए। गरीब आदमी हूं। विदेश में घोषाल से अच्छा वर कहां मिलेगा। पैसे वाला है। लड़की को खाने-पीने का दुख नहीं होगा। शराब तो, बाबू, सभी पीते हैं।"

शरत ने उसे बहुत समझाया। घोषाल का देना-पांवना चुका देने की भी बात कही। लेकिन वह नहीं माना।

कहा : "बाबू साहब, यदि आपको बहुत दया आती है तो आप ही क्यों नहीं शादी कर लेते इससे ? आप भी तो ब्राह्मण हैं !"

शरत को बात लग गयी । दूसरे को दुःख में देखकर वह दुखी हो उठते थे । लड़की का दुख उनसे नहीं देखा गया । उन्होंने उससे शादी कर ली । और यह शादी करके वह बहुत सुखी हुए । उनके एक पुत्र भी हुआ । ऐसा लगा जैसे उनके दुखों का अन्त आ पहुंचा हो । लेकिन विपदा के हाथ तो बड़े लम्बे थे । उसने फिर शरत पर आक्रमण किया । रंगून में एक बार फिर ताऊन फैला और ऐसा फैला कि ४८ घण्टे के अन्दर ही शरत की पत्नी और पुत्र दोनों उसकी भेंट चढ़ गये ।

शरत का भावुक हृदय हाहाकार कर उठा । वह इतना रोये, इतना रोये कि देखने वाले भी अपने को न संभाल सके । तब तक उनके बहुत मित्र हो चुके थे । इस आड़े वक्त में उनके मित्रों ने उनकी बहुत सहायता की ।

शरत बड़े दर्दी थे । दूसरों का दर्द देखकर स्वयं रो पड़ते थे । और केवल रोकर ही न रह जाते, उनका दर्द दूर करने के लिए जो कुछ हो सकता, करते । इस विदेश में किसी देशवासी को दुख में देखते तो उनका स्वाभिमान जाग उठता । उसकी हर तरह से सहायता करते, टिकिट खरीदकर उसे वापिस देश भेज देते । किसी अभागिन नारी को असहाय देखते तो उसकी

सहायता करने के लिए आतुर हो उठते, उसको दुर्गति के पथ पर नहीं जाने देते ।

बीच-बीच में वह कलकत्ता भी आते, साथियों से मिलते-जुलते । कहते हैं पहली पत्नी के मरने के बाद जब वह कलकत्ता आये तो उन्होंने चुपचाप एक गरीब ब्राह्मण की लड़की से शादी की । इस विवाह का किसी को पता तक नहीं चला । उनकी यह पत्नी, हिरण्यमयी देवी, स्वभाव की बड़ी मधुर, हृदय की बड़ी विशाल, जितनी दानशीला उतनी ही धर्मशीला थीं । इस विवाह के बाद शरत का जीवन बिल्कुल ही पलट गया । उनके सारे गुण ऊपर आ गये, उनमें जो दुर्गुण थे वे खतम हो गये ।

रंगून में रहते हुए उनको एक और शौक पैदा हुआ । यह शौक था चित्रकारी का । बड़े सुन्दर चित्र बनाये उन्होंने । हां, वह किसी को बताते नहीं थे । खूब अध्ययन करते और घर के अन्दर बैठकर चित्र बनाते ।

इनमें एक चित्र था 'महाश्वेता' का । जिसने भी इस चित्र को देखा, उसी ने खूब प्रशंसा की । उन्हें सलाह दी कि वह इसे प्रदर्शनी में भेजें । लेकिन शरत तो थे झेंपू । न अपना लिखा किसी को दिखाते, न अपना बनाया चित्र कहीं भेजते । इसके बाद एक ऐसी

दुर्घटना हुई कि यह चित्रकला सदा-सदा के लिए उनसे छूट गयी ।

कोन सी दुर्घटना ?

५ फरवरी, १९१२ की बात है । उनके पड़ोस में आग लग गयी । बर्मा में लकड़ी के मकान होते हैं, आग बढ़ते क्या देर लगती । बहुत जल्दी वह आग उनके घर में भी आ घुसी । शरत सो रहे थे । शोर मचने पर उठे, आवश्यक चीजें बक्स में डालीं और कुछ हाथ में लेकर नीचे आ गये । लेकिर बक्स नीचे न आ सका । असहाय होकर वह अपने ही सामने अपने घर को जलते देखने लगे । उनकी बहुमूल्य चीजें, उनके चित्र, उनका पुस्तकालय, पाण्डुलिपियां—सब-कुछ उनकी आंखों के सामने भस्म होने लगे ।

लेकिन तभी पता लगा कि पड़ोसी का एक बकरी का बच्चा अन्दर रह गया है । शरत तुरन्त अन्दर पहुंचे और अपने प्राणों को संकट में डालकर बकरी के बच्चे को बाहर निकाल लाये ।

यही एक कहानी नहीं है, इसी तरह की अनेकों कहानियों से उनका जीवन भरा पड़ा है । प्रेम तो जैसे उनके रोम-रोम में बसा हुआ था । उन्हें पक्षियों से, पशुओं से, फूलों से, सभी से प्रेम था ।

एक विचित्र पक्षी उन्होंने पाला था । वह पक्षी कुत्ते की तरह हमेशा सतर्क रहता । एक बार तो उसने चोर को पकड़वा दिया । चोर सांझ पड़े घर में घुस आया । घर में उस समय कोई नहीं था । पक्षी ने शोर मचाया । लेकिन पड़ोसी समझे कि यह रोज ही शोर मचाता है । तब उसने अपनी चोंच से पिंजड़े की तीली को मोड़ दिया और बाहर निकलकर चोर की पीठ पर चोंच से काटने लगा । चोर चीख उठा : "ओ मां, ओ बाप ।" उसने भागने की कोशिश की । पक्षी भी दर-वाजे पर डट गया । जैसे ही चोर बाहर निकलने की कोशिश करता, पक्षी अपनी चोंच से आक्रमण कर देता । वह तब तक आक्रमण करता रहा जब तक शरत वापिस न लौट आये । चोर पकड़ लिया गया ।

शरत मजाक करने में भी बहुत तेज थे । रंगून भर में वह मजलिसी आदमी मशहूर थे । खूब चोट करते, खूब रस लेते । वह और बंगालियों की तरह से केवल बंगालियों से ही नहीं मिलते थे । उनके मित्रों में मद्रासी, तमिल, ईसाई, बर्मी सभी थे । सबके साथ वह घुल-मिल जाते ।

शरत जब इस तरह रंगून में जीवन बिता रहे थे तभी उनके पीछे कलकत्ते में एक ऐसी घटना घटी जिसे

हम उनके सुनहरे प्रभात की उषा कह सकते हैं। हम बता चुके हैं कि जब वह भागलपुर में रहते थे तो उन्होंने कुछ कहानियां तथा छोटे-छोटे उपन्यास लिखे थे। उन्हीं में थी एक 'बड़ी दीदी'। उनके एक मित्र ने इस बड़ी कहानी को एक पत्र में छपवा दिया। सन् १९०७ की बात है। जिसने भी कहानी पढ़ी वही हैरान—ऐसा सुन्दर लिखने वाला कौन है। कहानी पर किसी का नाम नहीं दिया गया था। लोगों ने समझा कि रविन्द्रनाथ को छोड़कर ऐसा कोई नहीं लिख सकता। लेकिन रवीन्द्रनाथ से जब पूछा गया तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया, "मैंने नहीं लिखी।" कहानी पढ़कर वह भी हैरान रह गये, "इतना सुन्दर लिखने वाला कौन है? उसे खोजो।"

अन्तिम किश्त पर नाम छपा "शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय।" पर तब तक उन्हें जानता कौन था। स्वयं शरत को इस बात का पता बाद में लगा। इसी बीच में रंगून में भी ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी कि शरत को फिर से लिखने की प्रेरणा मिली। रंगून में बंगाली लोगों का एक क्लब था। कभी-कभी वहां साहित्य की चर्चा भी हो जाती थी। शरत हमेशा पीछे रहते थे। पर एक दिन नारियों की चर्चा चल रही थी। शरत ने

कुछ ऐसा कहा कि लोग दंग रह गये। बस हुक्म हुआ कि अगली बैठक में शरत नारी के सम्बन्ध में एक निबन्ध पढ़ें। शरत राजी हो गये।

आवेश में वह राजी तो हो गये, पर जब पढ़ने का अवसर आया तो घर से ही भाग खड़े हुए। सभा वाले परेशान, हैरान। बहुत देर राह देखने के बाद वे लोग घर पहुंचे। शरत हों तो मिलें। हां, ढूंढ़ने पर वह लेख मिल गया। एक मित्र ने उसे पढ़ा। दो घण्टे लगे। लेकिन जब वह समाप्त हुआ तो सब लोग 'धन्य-धन्य' कर उठे। यह लेख भी उस अग्नि-काण्ड में समाप्त हो गया जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं। लेकिन इसके बाद शरत का ध्यान लिखने की ओर गया।

सन् १९१२ में वह कलकत्ता आये और तब उन्हें पता लगा कि उनकी बड़ी कहानी 'बड़ी दीदी' 'भारती' में छपी है। वह तुरन्त अपने मित्र के पास पहुंचे।

उनके मित्र ने लिखा है: "मैं 'बड़ी दीदी' पढ़ने लगा। शरत लेट कर सुनने लगे। वह बीच-बीच में उठ बैठते और मेरे हाथ को दबाकर कह उठते—'चुप रहो।' उनकी आंखों में आंसू थे, गला रुंधा हुआ था। विस्मयचकित होकर उन्होंने कहा, 'यह मेरी रचना

है, इसको मैंने लिखा है ?' मानो उनको विश्वास ही नहीं होता था। हम लोगों ने उनको झाड़ा, 'लिखना छोड़कर तुमने कितना अपराध किया है !' शरत उदासीन, चुपचाप, बड़ी देर तक बैठे रहे—'अच्छा ! लिखूंगा. लिखना छोड़कर मैंने अच्छा नहीं किया। रचना अच्छी है। मेरा ही हृदय हिल गया।' फिर रुककर बोले, 'सौ रुपये मिलते हैं, बहुतों को देना पड़ता है। शरीर भी ठीक नहीं है। कुछ दिन और बर्मा में रहा तो तपेदिक हो जायगी।'

मैंने कहा : "सौ रुपये की व्यवस्था तो हम कर सकते हैं। तुम अभी तीन महीने की छुट्टी लेकर चले आओ।"

तीन महीने बाद शरत फिर कलकत्ता आये और इस बार उनका 'यमुना' के सम्पादक से परिचय हुआ और उन्हें 'यमुना' में लिखने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी।

कुछ दिन बाद 'यमुना' में उनकी पहली रचना 'रामेर सुमति' प्रकाशित हुई। इस कहानी ने उनकी प्रतिभा का मार्ग खोल दिया। कलकत्ता के पाठक और साहित्यकार विस्मय और कौतूहल से चकित रह गये।

स्वयं शरत ने लिखा है : "यह गल्प प्रकाशित होते ही बंगला के पाठक समाज में इसकी कदर हुई।

मैं भी एक ही दिन में प्रसिद्ध हो गया। फिर तो मैं फंस गया और तब से बराबर लिख रहा हूं।"

'यमुना' में 'रामेर सुमति' के बाद 'पदनिर्देश' और 'बिन्दो का लल्ला' प्रकाशित हुई। ये कहानियां तुम भी पढ़ना।

'भारतवर्ष' उस काल का प्रसिद्ध पत्र था। उसके सम्पादक थे बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय। राय महाशय ने 'यमुना' में 'रामेर सुमति' को पढ़ा और शरत के एक पुराने मित्र से कहा, "तुम इनकी रचनाओं को 'भारतवर्ष' के लिए पाने की कोशिश करो। भविष्य में बंगाली साहित्य में यह एक नये युग का सूत्रपात करेंगे।"

यह मित्र थे शरत के बचपन के साथी प्रमथ बाबू। उन्होंने शरत को लिखा। शरत उन दिनों 'चरित्रहीन' लिख रहे थे। यही उपन्यास उन्होंने 'भारतवर्ष' के लिए भेज दिया।

लेकिन राय महाशय को यह उपन्यास पसन्द नहीं आया। बाद में यह 'यमुना' में छपा और बहुत से आलोचकों के मत में यह शरत की सबसे अच्छी रचना है।

राय बाबू ने उसे लौटा दिया था। यह कोई अचरज की बात नहीं है, क्योंकि जब यह छपा तो चारों

ओर से शरत पर गालियों की बौछार शुरू हो गयी। इतनी बौछारें पड़ी कि वह मशहूर हो गये। शरत ने इस उपन्यास में कुछ ऐसी बातें लिखी थीं जो उस काल के सामाजिक नियमों के विरुद्ध थीं।

साहित्य क्या समाज के पीछे चलता है? वह तो नये समाज का लाने वाला होता है और नये समाज को देखकर पुराने समाज वाले गालियां दिया ही करते हैं। शरत ने उन गालियों की चिन्ता नहीं की और वह बराबर आगे बढ़ते रहे।

शरत : बर्मा में

पर दुःख की बात है कि इन दिनों उनका स्वास्थ्य खराब था। बर्मा की जलवायु तो उन्हें बिल्कुल ही अनुकूल नहीं पड़ रही थी। उनके पेट में बराबर दर्द रहता। तुमने पढ़ा ही है कि आवारगी भी उन्होंने कम नहीं की थी। या तो सन्यासी रहे या मैस में रहे। दोनों ही पेट के दुश्मन। बस वह देश लौटने को

उत्सुक हो उठे। एक मित्र को पत्र में उन्होंने लिखा, "क्या कोई मुझे सहायक सम्पादक के रूप में रख सकता है? बहुत सारे काम मैं अकेला ही कर दूंगा। एक लम्बी कहानी, एक धारावाहिक उपन्यास, एक निबन्ध और एक समालोचनात्मक लेख—यह सब मैं अकेले ही लिख दूंगा। इसके अतिरिक्त चित्रों का चुनाव, गीतों की स्वर-लिपि का गुण-दोष-विवेचन, वैज्ञानिक आलोचना और साहित्य की आलोचना यह भी मैं कर दे सकूंगा। १० बजे से ४-५ बजे तक मैं अच्छी तरह से खट सकता हूं...बर्मा में मेरा मन नहीं लगता। स्वदेश वापिस आने के लिए प्राण छटपटा रहे हैं..." डाक्टरों ने भी उनसे कहा कि अब आप रंगून छोड़ दीजिए।

तब प्रसिद्ध प्रकाशक हरीदास चट्टोपाध्याय ने १०० रुपये माहवार की जिम्मेदारी ली और इस प्रकार शरत ने १४ वर्ष के बाद मई १९१६ में रंगून छोड़ दिया।

रंगून में वह एक भिखारी बनकर गये थे, रंगून से वह एक महान साहित्यकार होकर लौटे। लेकिन सबसे बढ़कर एक ऐसा काम उन्होंने किया जिसके बारे में शायद आज भी बहुत से लोगों को पता नहीं है—वह शराब खूब पीते थे। और शराब पीना अच्छी

बात नहीं है। शरत ने यह बात रंगून में ही समझी और समझकर फिर कभी उन्होंने शराब नहीं पी। उनके शब्दों में ही वह कहानी सुनो :

"एक और चटर्जी थे। एक बर्मी भाई थे। हम तीनों एक साथ शराब पीते थे। अचानक वह बर्मी भाई बीमार हो गये। डाक्टर ने उन्हें शराब पीने की मनाही कर दी। छुट्टी लेकर वह अपना इलाज कराने लगे। तभी एक दिन क्या हुआ कि लगभग रात के ११ बजे, वह दूसरे चटर्जी मेरे घर आये। कहने लगे, दूकान बन्द हो गयी है और मुझे प्यास लगी है, शराब चाहिए।

"लेकिन मेरे पास जितनी शराब थी उससे उनकी प्यास नहीं बुझी। वह बोले, 'चलो उन बर्मी भाई के घर चलते हैं।' मैं राजी नहीं हुआ। लेकिन वह क्यों मानने वाले थे ? मुझे उनके साथ जाना पड़ा। एक बज चुका था। बहुत आवाज देने पर बर्मी भाई की पत्नी ने खिड़की से झांका। बोलीं : 'मेरे पति बीमार हैं। मेहरबानी करके आप लोग चले जायें।'

"लेकिन तब तक वह बर्मी भाई जाग गये थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—'दरवाजा खोल दो, हमारे घर में एक बोतल है, उसकी हमें क्या जरूरत है। मैं तो अब शराब पीता ही नहीं हूं।'

"मैंने तब भी वापिस लौटना चाहा। लेकिन चटर्जी नहीं माने। हम लोग अन्दर एक मेज के पास जाकर बैठ गये। बर्मी भाई की पत्नी पहरा देने के लिए सामने ही बैठी थीं। लेकिन दिन भर के काम से वह थक गयी थीं, इसलिए ऊंघने लगीं। तब चटर्जी ने बर्मी भाई से भी शराब पीने को कहा। उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा और इनकार कर दिया। लेकिन फिर पत्नी को सचमुच नींद आ गयी और बर्मी भाई शराब पीने लगे। एक बार, दो बार,...तीसरी बार पीते समय पात्र उनके हाथ से गिर पड़ा और उसके साथ ही भयानक शब्द करते हुए वह भी गिर पड़े। उस शब्द को सुनकर उनकी पत्नी, पुत्र, सब जाग पड़े। और उनकी छाती पर लोट-लोट कर उन लोगों ने जो क्रन्दन किया उसे सुनकर हमारा नशा हिरन हो गया। रात भर थाना-पुलिस हुआ, फिर अगले दिन बर्मी भाई का दाह-कर्म करके हम लोग लौटे। तब मैंने प्रतिज्ञा की कि अब शराब नहीं पिऊंगा। एक भला आदमी अपने पुत्र, पत्नी, आदि को लेकर सुख से सो रहा था, रात के एक बजे दो मतवाले उसके घर में घुसे और उसे मार डाला। ऐसा भयानक काण्ड होने पर भी यदि शराबी को ज्ञान नहीं होगा तो कब होगा ?"

मानव-मन का जो चितेरा है उससे यही आशा की जा सकती थी। रंगून छोड़ने का एक और भी कारण था। शरत की अपने अफसर से नहीं बनती थी। एक दिन साधारण-सी बात पर उसने शरत को बुरी तरह डाटा। शरत कब तक सहते? उन्होंने भी उत्तर दिया। बस बातों से हाथा-पाई की नौबत आ गयी। शरत उसमें तो क्या जीतते, पर स्तीफा जरूर दे दिया। बाद में वह निर्दोष ठहरे, पर उनका मन उचट चुका था।

छः

शरत कलकत्ता लौट आये। अब वह प्रसिद्ध लेखक थे। खूब लिखते थे, खूब पैसा मिलता था। १९२२--२३ तक उनकी आय १००० मासिक से भी बढ़ गयी। उन्हें अपनी मुसीबतों के दिन याद थे। उनके भाई-बहन इधर-उधर बिखरे हुए थे। एक भाई, प्रभास-चन्द्र, सन्यासी हो गये थे। स्वामी वेदानन्द उनका नाम था और वह रामकृष्ण आश्रम के सेवाकार्य की देखभाल करते थे। दूसरे भाई प्रकाशचन्द्र को उन्होंने अपने पास बुलाकर रखा। अपनी बहन अनीलादेवी को भी वह अक्सर अपने घर बुलाते थे। देखते-देखते उनका घर उनके मित्रों और नये लेखकों का, एक अड्डा बन गया।

शरत का नाम बढ़ा, सम्मान बढ़ा। साथ ही साथ विरोध भी बढ़ा। शरत का साहित्य पढ़ो तो एक बात

साफ दिखायी देगी कि उन्होंने हमेशा पतितों का, गिरे हुओं का, बड़ी सहानुभूति के साथ चित्रण किया है। गांधी जी कहा करते थे—"घृणा पाप से करनी चाहिए, पापी से नहीं।" शरत ने इस मंत्र को अपने साहित्य में उतार दिया था। उन्होंने पापियों को समझने और उठाने की पूरी कोशिश की। लेकिन उस जमाने का समाज तो बड़ा विचित्र था। वह तो पापी को तड़पते देखना चाहता था। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि कोई पाप करने को क्यों विवश होता है। शरत ने इस बात की चिन्ता की। उन्होंने माना कि आदमी पापी नहीं होता, वह कुछ ऐसे काम करने को मजबूर हो जाता है जिन्हें हम पाप कहते हैं।

और फिर पाप भी क्या है? कुछ लोगों ने अपनी सुविधा के अनुसार कुछ बातों को पाप मान लिया। पुरुष एक काम करता तो पापी न होता, लेकिन अगर नारी उसी काम को करे तो वह पापिनी कहलाती है। शरत इसी बात का विरोध करते थे और समाज वाले इस बात के लिए शरत की निन्दा करते थे। लेकिन शरत ने कभी इस निन्दा की चिन्ता नहीं की।

देशबन्धु का नाम कौन नहीं जानता! हमारे देश के वह महापुरुष थे। वह भी एक अखबार निकालते

थे। अपने अखबार के लिए उन्होंने शरत से एक कहानी मांगी। कहानी छपी। उसके बाद देशबन्धु ने एक कोरे चैक पर दस्तखत करके शरत के पास भेज दिया। कहा, "तुम्हारी कहानी के लिए क्या दूं, समझ में नहीं आता। अपने हाथ से जो चाहो चैक पर लिख लो।"

कैसा सुनहरा अवसर था! लेकिन जानते हो शरत ने क्या लिखा? केवल सौ रुपये। उस काल में वह इतने मशहूर हो गये थे कि उनकी एक रचना के लिए लोग कुछ भी दे सकते थे। लेकिन शरत का दिल बड़ा था, मुंह बड़ा नहीं था।

शरत केवल लेखक नहीं थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम में भी बहुत हिस्सा लिया था। जिसका मन सदा दूसरों के लिए करुणा से छलछलाता हो, जो सदा देने में ही सुख पाता हो, वह भला अपनी मातृभूमि को दासता में तड़पता देखकर कैसे चुप बैठ सकता है?

शरत राजनीति में देशबन्धु चितरंजन दास के साथ थे। सुभाषचन्द्र बोस जब नेशनल कालेज के प्रिन्सिपल थे तब शरत उसमें पढ़ाते भी थे, लेकिन वह पेशेवर राजनीतिज्ञ नहीं थे। जब कांग्रेस के अन्दर ही लोग आपस में लड़ने लगे तो वह चुपचाप उस दलदल से

बाहर निकलकर साहित्य के अपने शान्त जीवन में वापिस लौट गये ।

वह गांधी जी का जमाना था । गांधी जी खद्दर और चर्खे पर जोर देते थे । शरत चर्खे में विश्वास नहीं करते थे । लेकिन फिर भी वह खद्दर पहनते थे, चर्खा कातते थे, क्योंकि वह अपने देश को प्यार करते थे, उसे आजाद देखना चाहते थे और आजादी के एक सिपाही के नाते वह गांधी जी की हर बात को मानने के लिए तैयार थे । एक बार गांधी जी कलकत्ता आये । 'सर्वेण्ट' अखबार का दफ्तर देखने गये । वहां उन्होंने सबके साथ कताई की ।

उन दिनों श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती प्रान्तीय कांग्रेस के प्रधान थे । उन्हें बहुत मोटा कातते हुए देखकर गांधी जी बोल उठे : "देखो, देखो, बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस के प्रधान कितना मोटा कात रहे हैं !"

सुनकर शरत हंस पड़े । बोले : "मन्दिर के जो जितना पास होता है, भगवान उससे उतने ही दूर होते हैं ।"

गांधी जी ने पूछा : "शरत बाबू, आपको चर्खे में श्रद्धा नहीं है ?"

शरत बोले : "न, रत्ती भर भी नहीं ।"

गांधी जी ने कहा, "लेकिन कातते तो आप चर्खे के बहुत से प्रेमियों से बहुत अच्छा हैं ।"

शरत बोले : "मैं चर्खे को नहीं, आपको प्यार करता हूं । मैंने चर्खा कातना ही इसलिए सीखा था ।"

महात्मा जी हंस पड़े : "आप इस बात में विश्वास क्यों नहीं करते कि कातने से स्वराज्य पाने में सहायता मिलेगी ?"

शरत ने हंसते हुए उत्तर दिया : "नहीं, मैं विश्वास नहीं करता । मेरे विचार में चर्खे नहीं, सिपाही ही स्वराज्य दिलाने में सहायक हो सकते हैं ।"

शरत ने अनेक बार महात्मा जी का विरोध किया, लेकिन कभी उनके प्रति ऐसे शब्द नहीं कहे जिनसे उनका अनादर हो । वह मानते रहे कि महात्मा जी जो कुछ करते हैं, पूरे विश्वास और श्रद्धा से करते हैं । इसीलिए उनके सत्य प्रेम के कारण मेरी उनमें बड़ी श्रद्धा है । लेकिन उनसे विरोध रखकर, जो लोग देश की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों को संकट में डालते हैं, मैं उनमें भी श्रद्धा रखता हूं ।

वास्तव में शरत कलाकार थे । उनके पास शिल्पी का मन था, कूटनीतिज्ञ का नहीं । इसीलिए जब महात्मा जी को जेल हुई तो वह विचलित हो उठे और दर्द भरे

दिल से उन्होंने लिखा, "इस अभागे देश में ऐसा कानून भी है जिसके अपराध से इस आदमी को भी जेल जाना पड़ा।"

शरत अनेक वर्षों तक हावड़ा कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे और उन दिनों उनका लिखना-पढ़ना लगभग बन्द ही रहा। उनका मन हड़ताल, पिकेटिंग और चर्खे में रमा रहा। साहित्य चर्चा और साहित्यकारों से भेंट बन्द हो गयी। साहित्यिक बन्धुओं ने शिकायत की, "आप तो साहित्यिक हैं। आपका काम साहित्य चर्चा है, राजनीति नहीं।" शरत ने उत्तर दिया, "यह आपकी भूल है। मेरे विचार में राजनीति में योग देना, सब देशवासियों का कर्त्तव्य है। विशेष कर हमारे देश में एक राजनीतिक आन्दोलन देश की मुक्ति का आन्दोलन है। इस आन्दोलन में तो साहित्यिकों को सबसे आगे बढ़कर योग देना चाहिए। कारण, लोकमत जगाने का भार संसार के सभी देशों में साहित्यिकों के ऊपर रहा है। युग-युग में उन्होंने ही तो मनुष्य के मन में मुक्ति की आकांक्षा जगायी है। यदि आपकी बात मान लें तो वकील, बैरिस्टर, विद्यार्थी सभी ऐसे तर्क उपस्थित करेंगे। तब राजनीति को कौन संभालेगा?"

उनका एक उपन्यास है 'पथ के दावेदार'। उसमें उन्होंने उस काल के क्रान्तिकारियों के जीवन का चित्रण

किया है। इस उपन्यास को सरकार ने जब्त कर लिया था।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस का नाम तो सभी ने सुना है। वह जब भारत से भागे तब सहसा सात हजार रुपये की जरूरत हुई। रात को दस बजे शरत को सूचना मिली : तुरत रुपया न मिला तो सर्वनाश हो जायगा। देर तक सिर थामे बैठे रहे। फिर उठकर भागे। एक परिचित मारवाड़ी सज्जन के पास गये, प्रोनोट लिखा और रुपया लेकर बोस महोदय के पास भेजा।

शरत सन् १९१६ में कलकत्ता लौटे थे और तब से बाजेशिवपुर में एक छोटा सा मकान लेकर रह रहे थे। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने अपनी दादी के पास सामताबेड़ में जमीन खरीद ली और १९२५ में वहां मकान बनवाकर रहने लगे। तब तक वह प्रसिद्ध हो चुके थे, अनेक सभाओं के सभापति बने थे, कलकत्ता विश्वविद्यालय ने सन १९२३ में उन्हें 'जगत तारिणी स्वर्ण पदक' देकर उनका सम्मान भी किया था। उनके उपन्यासों के नाटक बने और कलकत्ता में उन्हें बड़ी सफलतापूर्वक खेला भी गया। प्रसिद्ध अभिनेता शिशिर भादुड़ी ने इन नाटकों का निर्देशन किया और स्वयं अभिनय भी किया।

शरत के एक बन्धु ने लिखा है : "एक दिन सबेरे शिवपुर शरत के पास गया। रविवार का दिन था। जाकर देखा कि घर में छोटी-बड़ी धोतियों और साड़ियों का ढेर लगा है और शरत का नौकर उन्हें बांधने की कोशिश कर रहा है। और शरत मेज पर बैठे हुए ढेर सारी इकन्नियां गिनकर रख रहे हैं। मुझे देखकर उन्होंने कहा,—'दादा, मैं दस वाली गाड़ी से दीदी के घर जा रहा हूं। लेकिन तुम चले न जाना।'

"मैंने कहा : 'दीदी के घर शायद कोई व्रत प्रतिष्ठा है इसीलिए कपड़े और इकन्नी-दुअन्नी ले जा रहे हो।'

"शरत धीरे-से इतना ही बोले, 'न दादा, ऐसी बात नहीं है।'

"मैंने फिर पूछा तो दुखी होकर बोले : 'दीदी के गांव में और आस-पास के गांवों में कैसी दुर्दशा है। उन लोगों के पेट में भात नहीं जाता, पहनने को कपड़ा नहीं मिलता...' और ऐसा कहते-कहते शरत का गला भर आया। वह आगे बोल नहीं सके।"

शरत के पास एक कुत्ता था। नाम था उसका भेलू। देखने में भद्दे डील-डौल का था और उनके घर मैं कोई आता तो वह उसका इतनी तेजी से स्वागत करता कि आने वाले को दस हाथ पीछे लौटना पड़ता।

तब शरत बाबू 'एई भेलू' पुकारते और वह भेलू भेड़ के बच्चे की तरह उनकी गोद में जा बैठता। उस भेलू को शरत बहुत प्यार करते थे। जब १९२५ में वह बीमार हुआ तो शरत ने उसकी चिकित्सा कराने मैं कुछ उठा न रखा। स्वयं उसे जानवरों के अस्पताल में ले जाकर दाखिल कराया और रोज उसे देखने के लिए जाते थे। इतना सब कुछ करने पर भी भेलू बचा नहीं। शरत को बहुत ही दुख हुआ। कहते हैं उस दिन उन्होंने इस तरह विलाप किया जैसे उनका अपना बेटा मर गया हो। इसके बाद वह यही कहते रहे : "भेलू नहीं रहा, अब मेरा भेलू नहीं रहा।" शिवपुर के घर में उसकी समाधि बनी हुई है।

उन्होंने अपने ड्राइवर को चेतावनी दे रखी थी कि यदि कभी उसने किसी कुत्ते के ऊपर से गाड़ी चला दी तो उसे निकाल दिया जायेगा।

उनके सारे साहित्य में यही करुणा बिखरी पड़ी है।

उस काल में सबसे पीड़ित थी नारी। शरत ने बंगाल की नारी को पालतू पशु की अवस्था से उठाकर पहली बार मनुष्यता की मर्यादा दी। इसीलिए उनकी सत्तावनवीं जन्म-तिथि के उपलक्ष में बंगाल भर के संघों

की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। इस अभि-
नन्दन में कहा गया था :

“पराधीन देश के गिरे हुए समाज की बेबस, घर की चारदीवारी में बन्द नारियों के हृदय की मूक वेदना को तुमने भाषा दी। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख-दुखों को सहानुभूतिपूर्वक साहित्य में चित्रित किया। सब तरह के अपमान और सब तरह की हीनता की हालत में भी नारी की जो विशेषताएं हैं वे सारे देश के सारे समाज में मौजूद हैं। तुमने इस सचाई को प्रकट किया। हम लोग तुमको श्रद्धा करती हैं, तुमको अपना ही करके समझती हैं। हे नारियों के मित्र, तुम हमारे प्रिय हो! तुम हमारे अपने हो! हम तुम्हारी वन्दना करती हैं!!”

शरत का सारा जीवन अब आनन्द का रहा हो, ऐसी बात नहीं। उन्हें अपनी पुस्तकें छपवाने में कठि-नाइयां भी बहुत हुईं। ‘पथ के दावेदार’ के प्रकाशन की तो बड़ी विचित्र कहानी है। उन दिनों ‘बंगवाणी’ बंगाल के तरुणों की पत्रिका थी। रमाप्रसाद मुखर्जी इसके सम्पादक थे। वह चाहते थे कि तरुणों के प्यारे साहित्यकार शरत का उपन्यास ‘पथ के दावेदार’ उसमें छपे। शरत ने कहा : “इसको प्रकाशित करने में

खतरा है, सोच लो।” लेकिन मुखर्जी महाशय बिल्कुल नहीं डरे और “बंगवाणी” में दो साल तक वह उपन्यास छपता रहा। इस उपन्यास में क्रान्तिकारियों की कहानी है। एक प्रकाशक इसको पुस्तक रूप में छापना चाहते थे। एक हजार रुपये उन्होंने पेशगी भी दे दिये थे। लेकिन जब पुस्तक पूरी हुई तो वह डर गये और उन्होंने चाहा कि इसमें से आपत्तिजनक अंश निकाल दिये जायें। शरत इस बात के लिए राजी नहीं हुए और उन्होंने तुरन्त पेशगी में मिले हुए एक हजार रुपयों का हिसाब कर दिया।

धीरे-धीरे सभी प्रकाशकों ने उसको छापने से इनकार कर दिया। अन्त में “बंगवाणी” के सम्पादक रमाप्रसाद मुखर्जी ने अपने खर्चे पर सब खतरा उठाकर इसको प्रकाशित किया। लेकिन कठिनाई का अन्त यहीं नहीं हुआ। कोई प्रेस इसको छापने के लिए तैयार नहीं था। अन्त में ‘काटन’ प्रेस ने इसको छापा। पहली बार तीन हजार प्रतियां छपीं। लेकिन एक ही महीने में सब बिक गयीं। दूसरी बार पांच हजार प्रतियां छपीं। तीन महीने में वे भी खतम हो गयीं। और तभी सरकार ने इसको जब्त कर लिया। शरत को इस पर बड़ा क्रोध आया और वह इस सवाल को लेकर एक आन्दोलन खड़ा करने को तैयार हो गये।

सहायता के लिए वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास भी गये। लेकिन उन्होंने मना कर दिया। शरत उनको गुरु के समान पूजते थे। लेकिन कई बार ऐसा अवसर भी आया जब उन्होंने अपने गुरु का विरोध किया और एक अवसर उनमें यह भी था। लेकिन फिर भी अन्त तक वह उनको अपना गुरु ही मानते रहे और गुरु की तरह उनका सम्मान करते रहे। रवीद्र-जयन्ती के अवसर पर उन्होंने मुक्त हृदय से उनका सम्मान किया और उनके लिए मान-पत्र लिखा।

शरत शहर में रहना पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए उन्होंने सामताबेड़ में मकान बनवाया था। वह मकान उन्होंने रूपनारायण के तट पर बनवाया था। इससे पहले बहुत पैसा खर्च करके नदी की धारा पर बांध बांधना पड़ा था। और इसी बांध के किनारे आराम कुर्सी बिछाकर बैठे रहना उन्हें पसन्द था। लेकिन उनकी पत्नी चाहती थीं कि कलकत्ता में भी एक मकान होना चाहिए। इसीलिए सन १९३४ में उन्होंने 'अश्विनीदत्त रोड' पर एक घर बनवाया। यही नहीं, अपनी पत्नी के आग्रह पर उन्होंने एक कार भी खरीदी थी। लोग आज तक उन पर यह लांछन लगाते हैं कि शरत ने शादी नहीं की थी, लेकिन ऐसा नहीं था। शरत का गृहस्थ जीवन बहुत सुखी था।

जो शरत एक दिन आवारा रहे, पैसे-पैसे के लिए दर-दर मारे-मारे फिरते रहे, वही शरत आज सुखी और समृद्धिशाली बने। लेकिन सुख के उन दिनों में शरत अपने दुख के दिनों को नहीं भूले और इसीलिए सदा चुपचाप दूसरों की सहायता करते रहे।

बनारस में एक बूढ़ी स्त्री रहती थी। शरत अपने मित्र हरीदास शास्त्री के द्वारा उनकी सहायता किया करते थे। बूढ़ी मां को शरत ने एक पत्र में लिखा था :

"मां, तुम्हारी चिट्ठी मिली। मेरा शरीर अच्छा है, कोई दुख नहीं है। तुम मेरी चिन्ता न करो। हरीदास मेरे छोटे भाई के समान है। वह तुम्हारी देख-भाल करेगा। उसको सब बातें बता देना। उसके समान अच्छा लड़का काशी में नहीं है। फिर वह चिकित्सक भी है। प्रभास वृन्दाबन से जल्दी आने वाला है। उसके आने पर मैं एक बार फिर काशी आ सकता हूँ। प्रकाश का विवाह हो गया है। दीदी आजकल यहीं पर हैं। तुमने घर बदल कर अच्छा किया। यह घर क्या तुम्हें पसन्द है ? अगर न हो तो दो-तीन रुपये अधिक भाड़ा देकर और घर लिया जा सकता है। तुम्हें भाड़े की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हरीदास रुपये देगा। बीच-बीच में अपने समाचार देती रहा करो। हरीदास से तुम्हारी सब बातें मालूम हो जाती हैं। मेरा वह

भोला नौकर बहुत बीमार है। इलाज हो रहा है। उम्र भी कम है। आशा है जल्दी ही ठीक हो जायगा।

तुम्हारा
शरत"

इस पत्र में शरत ने जो वास्तविक बात है वह छिपा ली है। हरीदास शास्त्री ने इसके बारे में लिखा है: "बूढ़ी मां के सम्बंध में दादा ने एक बार लिखा था, 'दुख पड़ने पर बूढ़ी मां ने मुझे बेटा कहकर पुकारा था। आजकल वह काशी में हैं। वह सम्भ्रान्त कुल की कन्या और बहू हैं। बाल-विधवा हैं। खूब पढ़ा-लिखा है। बंकिमचन्द्र और नवीन चन्द्र की बहुत बातें करती हैं। खाना-पकाना खूब आता है और खिलाना भी आता है। आखिरी उम्र में आंख खराब होने की वजह से पढ़ नहीं सकतीं।' दादा मेरे द्वारा उनकी सहायता करते रहे हैं। और किस प्रकार वह अपने को गुप्त रखकर सहायता करते रहे यह चिट्ठी इसका प्रमाण है। चिट्ठी में जो लिखा है कि घर का किराया हरीदास देगा, यह केवल अपने को छिपाने की बात है। वास्तविक बात तो यह है कि वह रुपये मेरे पास भेजते थे और मैं बूढ़ी मां को दे देता था।"

यह केवल एक उदाहरण है।

सात

हम तुम्हें बता चुके हैं कि सन १९२३ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने शरत को 'जगत तारणी स्वर्ण पदक' दिया था। इसके बाद अनेक प्रकार से उनका सम्मान किया गया। सन १९३४ में बंगीय साहित्य परिषद ने उनको अपना 'विशिष्ट सदस्य' चुना और सन १९३६ में ढाका विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर' की उपाधि देकर उनका सम्मान किया। अब वह यश की सबसे ऊंची चोटी पर थे। जनता के प्रिय थे, तरुणों के उपास्य-देव थे और विद्वानों के आदर के पात्र थे।

उनका जन्म-दिन प्रति वर्ष बड़े उत्साह से मनाया जाता था। उनके ६२ वें जन्म-दिन पर भी हर जगह सभाएं हुईं, उनको अभिनन्दन-पत्र भेंट किये गये। एक अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा: "अपनी साहित्य साधना के सम्बंध में अपने मुख से कुछ नहीं

कहा जा सकता। केवल मैं एक इशारा करना चाहता हूं कि अनेक दुखों के बीच में यह साधना धीरे-धीरे

साहित्यकार शरत

आगे बढ़ती रही है। किसी भी दिन मैंने नहीं चाहा कि मैं साहित्यकार होऊंगा या किसी भी दिन मेरी कोई पुस्तक प्रकाशित होगी। जो कुछ लिखता था, संकोच

के मारे दूसरों के नाम से लिखता था। उसका कोई मूल्य है या नहीं, यह मैं नहीं समझ पाता था। उसके बाद एक लम्बा समय बीत गया। सोचता हूं, १५-१६ साल तक साहित्य की कोई चर्चा ही नहीं हुई। मैं यह कभी सोच ही नहीं सका कि मैंने कभी लिखा था। उसके बाद नाना अवस्थाओं के बीच फिर यह जीवन शुरू हो गया। यह मेरा वास्तविक जीवन है...आपके बीच में मैं बहुत दिन रहूं या न रहूं, लेकिन मेरी एक बात आपको याद रहेगी कि उसने कहा था कि अनेक दुखों के बीच में उसकी साहित्य साधना वाधाओं को दूर करती हुई चलती रही थी।"

इस छोटे से उत्तर में शरत की साहित्य साधना की एक झांकी मिल जाती है।

शरत के जीवन का यह अन्तिम वर्ष था और इस वर्ष वह बीमार ही रहे। शरत के अपने कोई बच्चा नहीं था। अपने भाई प्रकाश चन्द्र के दोनों बच्चों को वह अपने बच्चों से अधिक प्यार करते थे। उनके बिना वह कहीं जाते नहीं थे।

उनके दूसरे भाई सन्यासी हो गये थे, किन्तु छोटी उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु का समाचार पाकर बेलूरमठ के एक सन्यासी शरत के पास आये थे

और इस बात की शिकायत की थी कि उन्होंने 'स्वामी वेदानन्द' का दाहकर्म क्यों किया। उनके शव को मठ में क्यों नहीं भेजा और उनकी समाधि मठ में क्यों नहीं बनायी। शरत ने उन्हें समझाने की चेष्टा की, पर वह नहीं समझे, जवाब-तलब करने लगे। अब शरत को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा : "स्वामी जी, आप भूल जाते हैं कि वह मेरा सहोदर था। मेरी ही तरह वह भी मेरी मां के पेट से उत्पन्न हुआ था। आपसे अधिक उस पर मेरा अधिकार था। आपका वह क्या था ?" स्वामी जी अब भी शान्त नहीं हुए बल्कि क्रुद्ध हो उठे। यह देखकर शरत बोले : "खैर, वह तो हुआ। अब आपके दल का एक और व्यक्ति यहां पर है, उसको अपने साथ ले जाइए।"

और उन्होंने पुकारा : "स्वामी जी, स्वामी जी !" एक क्षण बाद ही एक बकरा भागता हुआ वहां आया। शरत उसकी ओर देखकर बोले : "बेलूरमठ से यह तुम्हें लेने आये हैं।" फिर उन्होंने सन्यासी से कहा : "अपनी गेरुवी चादर इसको उढ़ा दीजिए, यह आपके दल में मिल जायेगा।"

कितना बड़ा व्यंग्य था यह ! स्वामी जी तिलमिला उठे और वहां से चले गये।

वास्तव में शरत ने उस बकरे का नाम 'स्वामी जी' रखा था। और उनका स्पष्ट संकेत था कि गेरुवे वस्त्र पहनने से या स्वामी जी कहलाने से ही कोई सन्यासी नहीं हो जाता।

शरत अब अधिकतर सामताबेड़ के घर में ही रहते थे। छोटा-सा गांव था वह। न वहां खाने को मिलता था, न पीने को। और शरत के पास आ जाते थे रोज अनेक अतिथि। हां, वे सचमुच अतिथि ही होते थे, क्योंकि बिना खबर किये ही पांच-पांच, सात-सात के दल बनाकर आते। उनका सत्कार कैसे हो ? शरत कभी-कभी व्याकुल हो उठते थे। लेकिन जैसे शरत थे वैसी ही उनकी पत्नी हिरण्यमयी देवी थीं। न जाने कैसे करतीं, पर कभी कोई अतिथि उनके द्वार से बिना खाये-पिये न लौटता। एकाध घण्टे के भीतर ही वह सब आयोजन कर देती थीं। अतिथि परम तृप्त होकर लौटते—फिर-फिर आने के लिए।

संसार नहीं जानता कि शरत अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे। हमेशा उनको "बहू" या "बड़ी बहू" कहकर पुकारते थे।

वह बेचारी तो बहुत सीधी-सादी, पति-परायणा, व्रत-उपवास करने वाली हिन्दू महिला थीं। उन्होंने

देखा कि बरसात के दिनों में गांव में बड़ी मुसीबत हो जाती है। उनके बीमार पति को बहुत असुविधा न हो, इसलिए उन्होंने कलकत्ता में मकान बनवाया था।

दुनिया शरत को उपन्यासकार या लेखक के रूप में ही जानती है। लेकिन इस साहित्य के पीछे व्यक्ति शरत की कितनी बड़ी साधना थी, यह कोई नहीं जानता। यह भी कोई नहीं जानता कि यह व्यक्ति शरत हवा में उड़ने वाला नहीं था। बल्कि अपने लिखे हुए एक-एक अक्षर को उसने अपने जीवन में उतारा था। सामताबेड़ के दीन-दरिद्र निवासी उन्हें साहित्य-सम्राट शरतचन्द्र या अपराजेय कथा-शिल्पी के रूप में नहीं जानते थे। वे तो उन्हें गरीबों के मां-बाप ही समझते थे और अपना समझकर "बड़े बाबू" और "देवता" कहकर पुकारते थे।

हम कह आये हैं कि शरत के साहित्य को लेकर देश में बड़ा मतभेद रहा। उन्होंने अपने काल के बहुत से रीति-रिवाजों का विरोध किया और इसी कारण उनका भी विरोध हुआ। बंगीय साहित्य परिषद में जब 'विशिष्ट सभ्य' बनाने की बात उठी तो प्राचीन दल वालों ने उनका विरोध किया। उन्होंने उन्हें अनीति-मूलक साहित्य की रचना करने वाला कहकर अपराधी

घोषित किया और 'सभ्य' नहीं चुनने दिया। लेकिन अन्त में एक दिन परिषद को अपनी गलती सुधारनी पड़ी! तरुण लोगों ने विद्रोह कर दिया और न केवल उन्हें 'विशिष्ट सभ्य' चुना बल्कि परिषद की साहित्य शाखा का सभापति भी निर्वाचित किया।

शरत पाप का प्रचार नहीं करते थे परन्तु ढोंगियों पर उन्होंने खूब चोट की है। उनकी कहानियों में कहीं भी कुलटा नारी का समर्थन नहीं है। वह तो वात्सल्य से पूर्ण मां और प्रेम की मूर्ति पत्नी है। अपने धर्म का पालन करना वह जानती है। हिन्दू समाज ने इसी नारी को डंडा-बेड़ी पहनाकर अंधेरे कुएं में डाल रखा था। शरत ने उसे बाहर आने का मार्ग सुझाया। उसे विद्रोह करने की शक्ति दी। इसीलिए पुरानपंथियों ने उन पर लांछन लगाये। बाद में जब उन्होंने ब्रह्मसमाजियों के ढोंग पर चोट की तो वे भी बिगड़ उठे!

शरत ने अधिकतर मध्यमवर्गीय हिन्दू परिवार के बारे में लिखा है, लेकिन गांव को उन्होंने भुलाया नहीं। 'पल्ली समाज' में विशेषकर गांवों की दुरवस्था का अच्छा चित्रण किया है। और 'महेश' कहानी में तो उन्होंने गरीबों पर जमींदार और पुरोहित के अत्याचार का दिल दहलाने वाला चित्र खींचा है। यह कहानी

आप अवश्य पढ़ें। इसमें गरीबी का चित्रण है। इसमें एक गरीब मुसलमान गफूर और उसके बैल 'महेश' की करुण कथा है। जमींदार और पुरोहित के जुल्म के कारण बैल मर जाता है और गफूर असहाय होकर बेटी अमीना के साथ 'चटकल' में काम करने चल देता है। उसके अन्तिम शब्द हैं : "अल्लाह, मेरा महेश प्यास से मरा है। उसके चरने तक को किसी ने जमीन नहीं दी। मुझे जितनी चाहे सजा दो मगर जिसने तुम्हारी दी घास और तुम्हारा दिया प्यास का पानी उसे पीने नहीं दिया उसका कसूर कभी माफ न करना।"

इस एक कहानी से शरत ने शोषण पर, साम्प्रदायिकता पर मार्मिक प्रहार किया है। यह विश्वसाहित्य की एक श्रेष्ठ कथा है।

शरत इतने बड़े लेखक थे। उनकी कहानी पढ़ते-पढ़ते आपके मन में उठ सकता है, "काश कि मैं भी लेखक बनूं।" ऐसे लेखक कोई बनता तो नहीं है, हां, कुछ लोगों में लेखक बनने के गुण होते हैं पर वे उनको जानते नहीं। शरत ने नये लेखकों के लिए बड़ी सुन्दर बातें कही हैं। तुम उन्हें गांठ बांध लो :

"केवल लिखना ही कठिन नहीं है। न लिखने की शक्ति भी कुछ कम कठिन नहीं है।"

"बोलने या अंकन करने से न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्म-संयम करना पड़ता है, बहुत लोभ का दमन करना पड़ता है, तभी सचमुच बोलना और अंकन करना होता है।"

"जो असुन्दर है, अनैतिक है, अकल्याणकर है वह किसी तरह 'कला' नहीं है, 'धर्म' नहीं है। 'कला कला के लिए' की युक्ति किसी तरह सत्य नहीं।"

"लेखक किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय का नहीं होता, वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सब-कुछ है।"

....

आठ

शरत का स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता जा रहा था। पहले भी स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था, लेकिन सन १९३६ में लू लगने से तो वह निरन्तर गिरता ही रहा। नाना प्रकार की चिकित्सा की गयी। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। उनको ज्वर रहने लगा। धीरे-धीरे वह बढ़ता गया और अन्त में शरत को शैया की शरण लेनी पड़ी। कलकत्ता के बड़े-बड़े डाक्टर उन्हें देखने आये और उन्होंने कहा: "मलेरिया है।" मलेरिया की चिकित्सा होने लगी। किन्तु ज्वर फिर भी नहीं गया। हालत गिरती गयी और तब डाक्टरों ने निर्णय किया कि यह मलेरिया नहीं है, वि-कोलाई है।

अब इसका इलाज होने लगा। इस बार वह ज्वर से मुक्त हो गये। कुछ दिन के लिए न चाह कर भी हवा बदलने देवघर भी गये और वहां से काफी स्वस्थ

होकर वापिस लौटे। लेकिन यह सब क्षणिक था। रोग फिर प्रकट हुआ और इस बार पता लगा कि पीड़ा उदर में है। डाक्टरों ने कहा: "डिस्पेप्सिया है।" उसका इलाज होने लगा। इसी काल में उन्होंने बच्चों के लिए बहुत सी कहानियां लिखीं और 'पाठशाला' के नाम से बच्चों के लिए एक पत्रिका भी निकाली। साथ ही साथ चिकित्सा भी चलती रही। लेकिन हालत में सुधार नहीं हुआ। परिवार वाले चिन्तित हो उठे और यह निश्चय किया गया कि इस बार कलकत्ता जाकर विशेष रूप से परीक्षा करायी जाये।

जिस दिन वह गांव से शहर जा रहे थे उस दिन घर में मुहूर्त को लेकर बड़ी चर्चा हुई। रविवार का दिन था। पंडित जी ने बताया कि कलकत्ता जाने का योग नहीं है। बस, हिरण्यमयी देवी घबड़ा उठीं। शरत इन बातों में विश्वास नहीं करते थे। लेकिन पत्नी विश्वास करती थीं। यह जानकर शरत तुरन्त सोमवार को जाने को राजी हो गये। आज या कल उनके लिए सब बराबर थे। तब, जिसमें दूसरे सुखी हों वही क्यों न हो? उन्हें विश्वास था कि वह ३-४ दिन में ही वापिस लौट आयेंगे।

लेकिन होना तो कुछ और ही था।

डा. विधानचन्द्र राय ने उनकी परीक्षा की। बताया कि यह डिस्पेप्सिया नहीं है, जिगर और पाकस्थली के बीच में कुछ है। एक्स-रे किया गया। पता लगा, जिगर में कैंसर है।

यह मृत्यु का बुलावा था। शरत मृत्यु के लिए तैयार थे। तो भी आपरेशन के लिए राजी हो गये। एक यूरोपियन नर्सिंग होम में प्रबन्ध किया गया। लेकिन शरत वहां न रह सके। उनको तमाखू और अफीम खाने की आदत थी। इसलिए उन्हें वह नर्सिंग होम छोड़ना पड़ा और वह अपने एक नातेदार डा. चटर्जी के नर्सिंग होम में चले गये। अवस्था इतनी गिर चुकी थी कि डाक्टर आपरेशन करने से डरते थे। उनको अगर कुछ खाने को न दिया गया तो भी मृत्यु निश्चित थी। मुख के द्वारा कुछ खिलाना असम्भव था। इन्जेक्शनों से भी बहुत लाभ होने की आशा नहीं थी। गुदा के द्वारा भोजन पहुंचाये जाने के लिए शरत राजी नहीं हुए। अन्त में यह निश्चय किया गया कि उनके पेट को चीरकर नली के द्वारा तरल पदार्थ अन्दर पहुंचाये जायें।

लेकिन इसमें भी तो डर था। शरत को पता लगा तो उन्होंने विश्वास दिलाया कि निडर होकर उनका आपरेशन कर सकते हैं।

आपरेशन किया गया। नली के द्वारा खाना दिया जाने लगा। उनके शरीर में रक्त नहीं था। बड़े भाई की जीवन-रक्षा के लिए छोटा भाई प्रकाश रक्त देने के लिए प्रस्तुत हो गया। दो दिन तक यह रक्त दिया गया। आशा की किरण जाग उठी, शरत कुछ दिन और जीवित रहेंगे।

लेकिन यह सब मृग-मरीचिका थी। शाम को आशा लेकर उनके सगे-सम्बंधी घर लौटे। कुछ ही देर में सूचना मिली कि अवस्था बिगड़ गयी है। वे तुरन्त नर्सिंग होम वापिस लौटे। शरत उल्टी कर रहे थे। यह सर्वनाश का लक्षण था। मामा ने पूछा : "शरत, यह क्या किया तुमने ?"

उत्तर मिला : "मुख के द्वारा अफीम और जल खा लिया।"

होश में शायद यह उनके अन्तिम शब्द थे। डाक्टर लोग इकट्ठे हो गये। लेकिन उल्टी बन्द नहीं हुई। धीरे-धीरे शरत संज्ञाहीन हो गये। पृथ्वी के मनुष्य के सारे प्रयत्न समाप्त हो गये। एक-एक करके डाक्टर आये और लौट गये। शरत के जीवन रूपी नाटक के अन्तिम दृश्य पर पर्दा गिरने लगा। उस संज्ञाहीन अवस्था में वह कई बार चिल्लाये : "आमाके दाओ," "आमाके दाओ !"—मुझे दो, मुझे दो।

और १६ जनवरी, रविवार की रात के १० बजे भारत के महान कथा-शिल्पी ने अन्तिम सांस ली।

उस दिन पूर्णिमा थी। जिस दिन उन्होंने जन्म लिया था, उस दिन भी पूर्णिमा ही थी। कैसे संयोग की बात है कि पूर्ण चन्द्र के प्रकाश में वह आये और पूर्ण चन्द्र के उजियारे में उन्होंने विदा ली। उस समय उनकी आयु ६१ वर्ष ४ मास थी।

अगले दिन संध्या के पांच बजे के लगभग केवड़ा तल्ले में एक विराट जन-समूह के सामने उनका मृतक शरीर भी अग्नि को सौंप दिया गया। शरत की केवल याद बाकी रह गयी और रह गया उनका विपुल साहित्य जो उनकी मानवता का अमर साक्षी है।

सारे बंगाल में हाहाकार मच गया। उनके जीवन काल में जो उनके विरोधी थे, उन्होंने भी मुक्त कण्ठ से उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा :

> जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने,
> क्षति तार क्षति नय, मृत्युर शासने,
> देशेर माटिर थेके निलो जारे हरि,
> देशेर हृदय तारे राखियाछे बरि।

प्रेम के आसन पर जिनका अमर स्थान है, मृत्यु के शासन में उन्हें खोना कोई खोना नहीं है। देश की मिट्टी से जो हर लिया गया है, देश के हृदय ने उनका वरण कर लिया है। अर्थात उनका और हमारा सम्बंध प्रेम का था, मृत्यु उन्हें हमसे दूर ले गयी लेकिन इस बात का उस सम्बंध पर कोई असर नहीं होगा। अब हम उन्हें देख नहीं सकेंगे लेकिन हमारे हृदय में वे सदा अमर रहेंगे।

विश्व कवि ने ठीक ही कहा था। शरत जैसे लेखक कभी नहीं मरते। जब तक उनका साहित्य अमर है, और यह भी निश्चित है कि वह अमर है, तब तक शरत भी अमर रहेंगे। उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए हम और आप सदा उनको अपने हृदय में पायेंगे।